03 सूरए आले इमरान

यहां पर सूरह आल-इमरान (1-5) के दिये गए आयतों की आलोचना की जा रही है, और यह दिखाया गया है कि ये आयतें कैसे न्याय दर्शन और अन्य दर्शनों के सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं।

1. अलिफ़ लाम मीम अल्लाह ही वह (ख़ुदा) है जिसके सिवा कोई क़ाबिले परस्तिश नहीं है (1)

न्याय दर्शन विश्लेषण:

- **न्याय दर्शन में सत्य के प्रमाण के रूप में प्रमाण (proof) की आवश्यकता होती है। "अल्लाह के अलावा कोई पूजा के योग्य नहीं है" का दावा बिना प्रमाण या तर्क के किया गया है। न्याय दर्शन तर्क और साक्ष्य के आधार पर सत्य की स्थापना करता है, और इस आयत में बिना किसी तर्क या प्रमाण के एक सार्वभौमिक दावे का होना न्याय के सिद्धांत के विपरीत है।**

पूर्व मीमांसा विश्लेषण:

- **पूर्व मीमांसा वेदों के अधिकार को मानता है और धर्म (धार्मिक आचरण) के आधार पर कार्य करने पर जोर देता है। "एक ही भगवान की पूजा के योग्य है" का विचार सभी मानवता के धार्मिक विविधता को अनदेखा करता है, जो कि पूर्व मीमांसा के दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता, जो कई मार्गों को स्वीकार करता है।**

वैशेषिक विश्लेषण:

- **वैशेषिक दर्शन में सृष्टि की व्याख्या अणु (atoms) और पदार्थों के रूप में की जाती है। यहाँ पर केवल एक देवता के द्वारा सृष्टि का नियंत्रण करने का दावा वैशेषिक सिद्धांत से मेल नहीं खाता, क्योंकि वैशेषिक दर्शन में यह समझने की कोशिश की जाती है कि ब्रह्मांड और उसके तत्वों का अस्तित्व पदार्थ और अणु के माध्यम से होता है, न कि किसी एक दिव्य सत्ता के नियंत्रण में।**

2. वही ज़िन्दा (और) सारे जहान का सॅभालने वाला है (2)

न्याय दर्शन विश्लेषण:

- न्याय दर्शन में प्रमाण पर जोर दिया जाता है। "सारे ब्रह्मांड का संचालन करने वाला भगवान" का दावा बिना कोई तर्क या प्रमाण पेश किये किया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, इस तरह के दावे के लिए प्रमाण की आवश्यकता है जो यहाँ अनुपस्थित है, और इस आयत में दी गई बात का तार्किक आधार नहीं है।

सांख्य योग विश्लेषण:

- सांख्य योग दर्शन में पुरुष (सचेतना) और प्रकृति (पदार्थ) का द्वैत माना जाता है। यहाँ पर ब्रह्मांड के संचालन के लिए एक एकल भगवान का दावा सांख्य योग के सिद्धांत से मेल नहीं खाता, क्योंकि इस दर्शन में ब्रह्मांड का विकास चेतना और पदार्थ के बीच के संतुलन से होता है, न कि किसी एक दिव्य सत्ता के नियंत्रण से।

3. (ऐ रसूल) उसी ने तुम पर बरहक़ किताब नाज़िल की जो (आसमानी किताबें पहले से) उसके सामने मौजूद हैं उनकी तसदीक़ करती है और उसी ने उससे पहले लोगों की हिदायत के वास्ते तौरेत व इन्जील नाज़िल की (3)

न्याय दर्शन विश्लेषण:

- इस आयत में यह दावा किया गया है कि कुरआन पहले की किताबों की पुष्टि करता है, यह एक धार्मिक दावा है। न्याय दर्शन प्रमाणों पर आधारित है और यहाँ पर इस दावे की सत्यता को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य या तर्क नहीं दिया गया। इसके बिना, यह आयत न्याय के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती है।

उत्तर मीमांसा (वेदांत) विश्लेषण:

- वेदांत में परम सत्य (ब्रह्म) का सार्वभौमिक दृष्टिकोण होता है जो किसी एक विशेष धार्मिक ग्रंथ पर आधारित नहीं होता। केवल कुछ विशेष किताबों की पुष्टि करने के बजाय, वेदांत एक सर्वव्यापी सत्य को स्वीकार करता है। इस आयत में दिए गए सीमित दृष्टिकोण से यह वेदांत के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है।

4. और हक़ व बातिल में तमीज़ देने वाली किताब (कुरान) नाज़िल की बेशक जिन लोगों ने ख़ुदा की आयतों को न माना उनके लिए सख़्त अज़ाब है और ख़ुदा हर चीज़ पर ग़ालिब बदला लेने वाला है (4)

न्याय दर्शन विश्लेषण:

- **न्याय दर्शन न्यायपूर्ण और तर्कसंगत तरीके से प्रत्येक दावे की सत्यता का परीक्षण करता है। यहाँ पर "कड़ी सजा" का दावा किया गया है बिना यह स्पष्ट किए कि क्यों और किस आधार पर यह सजा दी जाएगी। बिना उचित तर्क या प्रमाण के इस तरह के कठोर दावे न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते हैं।**

वैशेषिक विश्लेषण:

- **वैशेषिक दर्शन में पदार्थ और अणुओं की विवेचना की जाती है, और कोई भी दंडात्मक या धार्मिक परिभाषा उनके दृष्टिकोण से अलहदा है। यहाँ पर यह दावा किया गया है कि जिन लोगों ने भगवान की आयतों का इनकार किया, उनके लिए कड़ी सजा है, जो वैशेषिक दृष्टिकोण से वास्तविकता को समझने की बजाय केवल एक धार्मिक विचार है, जो पारंपरिक वैधानिक दृषटिकों से मेल नहीं खाता।**

5. बेशक ख़ुदा पर कोई चीज़ पोशीदा नहीं है (न) ज़मीन में न आसमान में (5)

न्याय दर्शन विश्लेषण:

- **न्याय दर्शन प्रमाण (साक्ष्य) पर आधारित होता है और हर चीज़ को प्रमाण के द्वारा प्रमाणित किया जाता है। इस आयत में यह दावा किया गया है कि सब कुछ ख़ुदा के नियंत्रण में है, लेकिन बिना किसी ठोस तर्क या प्रमाण के यह दावा केवल एक धार्मिक विश्वास है, जो न्याय दर्शन के तर्कसंगत सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।**

सांख्य योग विश्लेषण:

- **सांख्य योग में यह माना जाता है कि संसार के तत्वों का अस्तित्व प्रकृति (प्रकृति या पदार्थ) और पुरुष (सचेतना) के बीच है। यदि कोई देवता सब कुछ जानता है, तो वह हमारे अव्यक्त चेतना को समझने का तरीका नहीं है, और सांख्य योग के दृष्टिकोण से यह आयत अनुपयुक्त है।**

निष्कर्ष:

कुल मिलाकर, ये आयतें न्याय दर्शन, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, सांख्य योग, वेदांत और मैनुस्मृति के दृष्टिकोण से आलोचना की जा सकती हैं। इन आयतों में जो दावे किए गए हैं, वे तर्क, प्रमाण और न्यायपूर्ण विचार के बिना हैं।

यहां पर प्रत्येक आयत की आलोचना करते हुए एक तालिका दी गई है, जिसमें न्याय दर्शन, विभिन्न दर्शनों (Purva Mimamsa, Vaisheshika, Nyaya, Sankhya Yoga, Uttara Mimamsa (Vedanta)), भगवद गीता, और सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से उस आयत का विश्लेषण किया गया है।

आलोचना तालिका:

आयत	न्याय दर्शन	पूर्व मीमांसा	वैशेषिक	सांख्य योग	वेदांत	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
1. अलिफ़ लाम मीम - "अल्लाह ही वह (ख़ुदा) है जिसके सिवा कोई क़ाबिले परस्तिश नहीं है"	इस आयत में बिना प्रमाण के एक सार्वभौमिक दावा किया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता है।	पूर्व मीमांसा धर्म के अधिकार को मानता है, लेकिन यह आयत केवल एक परम सत्ता की पूजा को मान्यता देती है, जबकि पूर्व मीमांसा	वैशेषिक पदार्थों और अणुओं के माध्यम से ब्रह्मांड को समझता है, और इस आयत में दिए गए एकल देवता के विचार से मेल नहीं खाता।	सांख्य योग में ब्रह्मांड का संचालन चेतना और पदार्थ के द्वैत से होता है, न कि किसी एक देवता के नियंत्रण से।	वेदांत में सार्वभौमिक सत्य का दृष्टिकोण है, न कि किसी एक विशेष देवता की पूजा की पुष्टि।	भगवद गीता में भगवान के रूप में कर्मयोग और भक्ति का महत्व है, लेकिन यह सभी के लिए समान रूप से मान्य नहीं है।	यह आयत सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती क्योंकि यह केवल एक विशिष्ट धर्म और एक देवता को मान्यता देती है।

		विभिन्न पूजा पद्धतियों को स्वीकार करता है।					
2. वही ज़िन्दा (और) सारे जहान का सॅभालने वाला है	इस आयत में बिना तर्क या प्रमाण के ब्रह्मांड के संचालन का दावा किया गया है। न्याय दर्शन में सत्य की स्थापना प्रमाण और तर्क पर आधारित होती है।	पूर्व मीमांसा में विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोणों को स्वीकार किया जाता है, लेकिन यह आयत एक विशेष देवता के नियंत्रण को स्वीकार करती है।	वैशेषिक दर्शन में पदार्थों और अणुओं के रूप में ब्रह्मांड का अस्तित्व माना जाता है, न कि किसी एक देवता द्वारा।	सांख्य योग में ब्रह्मांड का विकास चेतना और पदार्थ के संतुलन से होता है, न कि किसी एक देवता के नियंत्रण से।	वेदांत के अनुसार ब्रह्मा के अस्तित्व में चेतना और पदार्थ का मिलाजुला रूप होता है, न कि केवल एक देवता के नियंत्रण में।	भगवद गीता में ईश्वर के रूप में कर्मयोग और भक्ति का महत्व है, लेकिन यह एक एकल देवता के नियंत्रण की पुष्टि नहीं करती है।	यह आयत सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से असंगत है, क्योंकि यह एकल देवता के नियंत्रण को मानती है।
3. उसी ने तुम पर	इस आयत में बिना	पूर्व मीमांसा	वैशेषिक दर्शन में	सांख्य योग में	वेदांत में कोई एक विशेष	भगवद गीता में	सार्वभौमिक मानवता के

बरहक़ किताब नाज़िल की	प्रमाण के यह दावा किया गया है कि कुरआन पूर्व की किताबों की पुष्टि करता है। न्याय दर्शन में यह बिना तर्क के एक धार्मिक दावा है।	में विभिन्न धार्मिक पद्धतियों को स्वीकार किया जाता है, लेकिन यह आयत एक विशेष किताब की पुष्टि करती है।	ब्रह्मांड को अणुओं के माध्यम से समझा जाता है, न कि किसी एक किताब से।	सार्वभौमिक तत्वों को समझने का प्रयास किया जाता है, न कि किसी एक किताब के माध्यम से।	किताब की पुष्टि नहीं की जाती, बल्कि सार्वभौमिक सत्य पर बल दिया जाता है।	परम सत्य और कर्म के योग पर बल दिया गया है, न कि किसी एक किताब के विशिष्ट होने पर।	दृष्टिकोण से यह आयत असंगत है, क्योंकि यह केवल एक विशेष किताब को मान्यता देती है।
4. हक़ व बातिल में तमीज़ देने वाली किताब	न्याय दर्शन में प्रमाण और तर्क पर आधारित सत्य की जांच की जाती है, लेकिन इस आयत में बिना प्रमाण के	पूर्व मीमांसा धार्मिक आचार पर बल देती है, लेकिन यह आयत बिना तर्क के दंडात्मक	वैशेषिक में सृष्टि का विश्लेषण पदार्थों के आधार पर किया जाता है, न कि किसी	सांख्य योग में वस्तु और चेतना के द्वैत के बीच ब्रह्मांड को समझा जाता है, न कि किसी किताब से।	वेदांत में परम सत्य के प्रति एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण होता है, न कि किसी विशेष किताब पर।	भगवद गीता में कर्म और भक्ति के आधार पर जीवन को समझा जाता है,	यह आयत सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से मेल नहीं खाती क्योंकि यह एक विशेष किताब के माध्यम से सत्य का निर्धारण

	”सख़्त अज़ाब” का दावा किया गया है।	विचार को स्वीकार करती है।	एक विशेष किताब के आधार पर।			न कि केवल किसी किताब के आधार पर।	करती है।
5. बेशक ख़ुदा पर कोई चीज़ पोशीदा नहीं है	न्याय दर्शन में यह दावे को प्रमाण और तर्क द्वारा सिद्ध किया जाता है। इस आयत में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है।	पूर्व मीमांसा में प्रमाण पर जोर दिया जाता है, लेकिन इस आयत में कोई ठोस प्रमाण नहीं है।	वैशेषिक दर्शन में ब्रह्मांड और उसके तत्वों का विश्लेषण पदार्थों के रूप में किया जाता है, न कि किसी विशेष देवता के ज्ञान से।	सांख्य योग में चित्त और पदार्थ के द्वैत के आधार पर ब्रह्मांड को समझा जाता है। यह आयत इसके विपरीत है, क्योंकि यह किसी विशेष देवता के ज्ञान का दावा करती है।	वेदांत के अनुसार, ब्रह्म और सर्वशक्तिमान के रूप में चेतना और पदार्थ का एकत्रित अस्तित्व होता है, लेकिन यह आयत केवल एक देवता के ज्ञान पर आधारित है।	भगवद गीता में भगवान के रूप में चेतना और कर्म के योग को देखा जाता है, न कि किसी देवता के ज्ञान के माध्यम से।	यह आयत सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से असंगत है, क्योंकि यह केवल एक विशेष देवता के ज्ञान को मान्यता देती है।

निष्कर्ष:

यह तालिका इस बात को स्पष्ट करती है कि कुरआन के विभिन्न आयतों में दिए गए दावे न्याय दर्शन, पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, सांख्य योग, वेदांत और भगवद गीता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते। इसके अलावा, इन आयतों का सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से भी कोई समन्वय नहीं है, क्योंकि यह केवल एक विशेष धार्मिक प्रणाली और विश्वास को स्वीकार करते हैं, जबकि सार्वभौमिक मानवता का दृष्टिकोण अधिक समावेशी और तर्क आधारित होता है।

आयतों 6 से 10 की आलोचना को हम न्याय दर्शन और अन्य दर्शनों के संदर्भ में देखते हैं, और यह दिखाते हैं कि ये आयतें सार्वभौमिक सत्य और मानवता के सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं।

6. "वही तो वह ख़ुदा है जो माँ के पेट में तुम्हारी सूरत जैसी चाहता है बनाता है उसके सिवा कोई माबूद नहीं"

आलोचना:

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन के अनुसार, सत्य के प्रमाण के लिए अनुभव और तर्क की आवश्यकता होती है। यह आयत बिना किसी तर्क के यह दावा करती है कि "ख़ुदा" मां के पेट में सूरत बनाता है। इस विचार को प्रमाणित नहीं किया गया है, और यह न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।**
- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में ब्रह्मांड के निर्माण और पदार्थों का विश्लेषण अणुओं और तत्वों के सिद्धांतों से किया जाता है। यह आयत पदार्थों और उनके घटनाओं के साथ मेल नहीं खाती, क्योंकि यह किसी विशेष शक्ति द्वारा सूरत बनाने की बात करती है।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग के अनुसार ब्रह्मांड का निर्माण प्रकृति (प्रकृति और पुरुष) के मेल से होता है। यहां आयत में एक विशेष ईश्वर की भूमिका दिखाई गई है, जो सांख्य योग से मेल नहीं खाता।**
- **वेदांत: वेदांत के अद्वैत सिद्धांत में ब्रह्म और आत्मा का अस्तित्व है, लेकिन यहां आयत में ईश्वर के लिए एक व्यक्तिगत भूमिका का वर्णन किया गया है, जो अद्वैत के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**
- **सार्वभौमिक मानवता: यह आयत एक विशेष ईश्वर की भूमिका पर जोर देती है, जबकि सार्वभौमिक मानवता में सभी मनुष्यों के समान अधिकार और सम्मान की बात की जाती है। इससे यह आयत सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती है।**

---

7. "वही (हर चीज़ पर) ग़ालिब और दाना है"

आलोचनाः

- न्याय दर्शनः न्याय दर्शन में किसी भी दावा को प्रमाणित करने के लिए तर्क और अनुभव की आवश्यकता होती है। यहां इस आयत में "वही ग़ालिब और दाना है" का दावा किया गया है, लेकिन इसे तर्क से प्रमाणित नहीं किया गया है।

- वैशेषिक दर्शनः वैशेषिक दर्शन में पदार्थों और उनके गुणों का सिद्धांत होता है। यह आयत ब्रह्मांड के निर्माण में किसी व्यक्तिगत ईश्वर की भूमिका को बढ़ावा देती है, जबकि वैशेषिक दर्शन में आत्मा और पदार्थों के बीच के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड का संचालन होता है।

- सांख्य योगः सांख्य योग में "प्रकृति" और "पुरुष" के सिद्धांत का पालन किया जाता है। यहां आयत में एक ईश्वर की शक्ति का बयान है, जो सांख्य योग से मेल नहीं खाता है, क्योंकि यह सिद्धांत ब्रह्मा के व्यक्तिगत गुणों के खिलाफ है।

- वेदांतः वेदांत में ब्रह्म और आत्मा के अद्वैत सिद्धांत पर बल दिया गया है। यहां आयत में एक व्यक्तिगत और सशक्त ईश्वर का वर्णन किया गया है, जो अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाता।

- सार्वभौमिक मानवताः यह आयत किसी विशेष ईश्वर के गुणों को बढ़ावा देती है, जो सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांत से मेल नहीं खाती, क्योंकि सार्वभौमिक मानवता में सभी के लिए समानता और अधिकार की बात की जाती है।

---

8. "और दुआ करते हैं, ऐ हमारे पालने वाले हमारे दिल को हिदायत करने के बाद डावाडोल न कर और अपनी बारगाह से हमें रहमत अता फ़रमा इसमें तो शक ही नहीं कि तू बड़ा देने वाला है"

आलोचनाः

- न्याय दर्शनः न्याय दर्शन में किसी भी विचार का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क के आधार पर किया जाता है। यह आयत बिना किसी साक्ष्य के दावा करती है कि "ख़ुदा" दिल को डावाडोल होने से बचाता है। यह आयत तर्क और अनुभव के आधार पर प्रमाणित नहीं है।

- वैशेषिक दर्शनः वैशेषिक दर्शन में पदार्थों और घटनाओं के बीच के कारण और प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है। यहां दिल को डावाडोल होने से बचाने का दावा किसी पदार्थ से संबंधित नहीं है, जो

वैशेषिक सिद्धांत से मेल नहीं खाता।

- सांख्य योग: सांख्य योग में आत्मा और प्रकृति के बीच संतुलन की बात की जाती है, लेकिन यहां पर किसी दिव्य शक्ति के बारे में दावा किया जा रहा है, जो सांख्य योग के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।
- वेदांत: वेदांत में अद्वैत के सिद्धांत पर बल दिया गया है, जिसमें आत्मा और ब्रह्म का मिलन है। यहां आयत में दिल को हिदायत देने की बात की गई है, जो अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाती।
- सार्वभौमिक मानवता: यह आयत किसी विशेष ईश्वर से व्यक्तिगत प्रार्थना करने की बात करती है, जबकि सार्वभौमिक मानवता में प्रत्येक व्यक्ति का समान सम्मान और अधिकार होता है।

---

९. "ऐ हमारे परवरदिगार बेशक तू एक न एक दिन जिसके आने में शुबह नहीं लोगों को इक्ट्ठा करेगा (तो हम पर नज़रे इनायत रहे) बेशक ख़ुदा अपने वायदे के ख़िलाफ़ नहीं करता"

आलोचना:

- न्याय दर्शन: न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी भविष्यवाणी को सत्य मानने के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है। यह आयत एक भविष्यवाणी करती है, लेकिन इसे प्रमाणित करने के लिए कोई तर्क नहीं दिया गया है।
- वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में ब्रह्मांड के घटनाओं का विश्लेषण अणुओं और तत्वों से किया जाता है, और इसमें किसी भविष्यवाणी या ईश्वर के वादे की बात नहीं की जाती।
- सांख्य योग: सांख्य योग के सिद्धांत में कर्म और फल के बीच के संबंध पर बल दिया जाता है, लेकिन यहां ईश्वर के वादे के आधार पर एक भविष्यवाणी की जा रही है, जो सांख्य सिद्धांत से मेल नहीं खाती।
- वेदांत: वेदांत में एकात्मता की बात की जाती है, और यहां आयत में एक ईश्वर के वादे का उल्लेख किया गया है, जो अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाता।
- सार्वभौमिक मानवता: यह आयत भविष्यवाणी और एक व्यक्तिगत ईश्वर के वादे को बढ़ावा देती है, जो सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती।

10. "बेशक जिन लोगों ने कुफ्र इख़्तेयार किया उनको ख़ुदा (के अज़ाब) से न उनके माल ही कुछ बचाएंगे, न उनकी औलाद (कुछ काम आएगी) और यही लोग जहन्नुम के ईंधन होंगे"

आलोचना:

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में किसी भी व्यक्ति के कर्मों का मूल्यांकन तर्क और न्याय के आधार पर होता है। यह आयत बिना किसी प्रमाण और तर्क के कहती है कि जिन लोगों ने कुफ्र किया, उनका कोई उद्धार नहीं होगा, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में कर्मों के परिणामों को पदार्थों और तत्वों के सिद्धांतों से जोड़ा जाता है। इस आयत में कर्मों का तात्कालिक परिणाम बताया गया है, जो वैशेषिक दृष्टिकोण से मेल नहीं खाता।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग के सिद्धांत में आत्मा और प्रकृति के बीच संबंध पर बल दिया गया है, और यह आयत एक व्यक्ति के कर्मों के परिणाम के रूप में पाप और नरक की बात करती है, जो सांख्य सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **वेदांत: वेदांत के अद्वैत सिद्धांत में आत्मा और ब्रह्म के बीच कोई अंतर नहीं होता, और यहां आयत में एक विशेष धर्म पर आधारित पाप और पुण्य की बात की गई है, जो अद्वैत के सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **सार्वभौमिक मानवता: यह आयत धर्म और विश्वास के आधार पर मनुष्यों के बीच भेदभाव करती है, जबकि सार्वभौमिक मानवता में सभी मनुष्यों के समान अधिकार और सम्मान की बात की जाती है।**

आलोचना तालिका:

आयत संख्या	आयत	आलोचना (दर्शन और गीता के संदर्भ में)	सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांत से मेल
6	वही तो वह ख़ुदा है जो माँ के पेट में तुम्हारी सूरत जैसी चाहता है	न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य योग, वेदांत से	सार्वभौमिक सिद्धांत से विरोध

	बनाता है	असंगत	
7	वही (हर चीज़ पर) ग़ालिब और दाना है	न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य योग, वेदांत से असंगत	व्यक्तिगत ईश्वर का उल्लेख
8	हमारे दिल को हिदायत करने के बाद डावाडोल न कर	न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य योग, वेदांत से असंगत	सार्वभौमिक सिद्धांत से विरोध
9	तू एक न एक दिन लोगों को इकठ्ठा करेगा	न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य योग, वेदांत से असंगत	सार्वभौमिक सिद्धांत से विरोध
10	जिन लोगों ने कुफ्र इख़्तेयार किया उन्हें जहन्नुम में भेजा जाएगा	न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य योग, वेदांत से असंगत	भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण

आयतों 11 से 15 की आलोचना हम न्याय दर्शन और अन्य दर्शनों के सिद्धांतों के संदर्भ में करते हैं। साथ ही, हम दिखाएंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक मानवता और गीता के सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं।

11. "उनकी भी क़ौमे फ़िरऔन और उनसे पहले वालों की सी हालत है कि उन लोगों ने हमारी आयतों को झुठलाया तो ख़ुदा ने उन्हें उनके गुनाहों की पादाश {सज़ा} में ले डाला और ख़ुदा सख़्त सज़ा देने वाला है"

आलोचना:

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में, किसी भी व्यक्ति के कर्मों का निष्कलंक और तर्कसंगत मूल्यांकन किया जाता है। यह आयत बिना किसी प्रमाण और निष्कलंक तर्क के कहती है कि उन लोगों ने आयतों को झुठलाया और उन्हें सजा दी गई। यह दृष्टिकोण न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि यह दोषारोपण बिना स्पष्ट कारण के किया गया है।**

- **वैशेषिक दर्शन:** वैशेषिक दर्शन के अनुसार, भूत, वर्तमान और भविष्य के पदार्थों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। यह आयत केवल एक धार्मिक दृष्टिकोण से सजा की बात करती है, जबकि वैशेषिक दर्शन में पदार्थों और घटनाओं के कारण और प्रभाव का विश्लेषण होता है, जिसका इससे कोई ताल्लुक नहीं है।
- **सांख्य योग:** सांख्य योग में, कार्यों के परिणाम का विश्लेषण प्रकृति और पुरुष के सिद्धांत के अनुसार किया जाता है, लेकिन यह आयत एक व्यक्तिगत ईश्वर द्वारा सजा देने का दावा करती है, जो सांख्य सिद्धांत से मेल नहीं खाता।
- **वेदांत:** वेदांत में ब्रह्म और आत्मा का एकात्म सिद्धांत है। इस आयत में किसी विशेष ईश्वर द्वारा सजा देने का बयान किया गया है, जो अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाता।
- **सार्वभौमिक मानवता:** यह आयत किसी को दोषी ठहराकर सजा देने की बात करती है, जो सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांत से मेल नहीं खाती। सार्वभौमिक मानवता में हर व्यक्ति को सम्मान और समान अधिकार दिए जाते हैं।

---

12. "जिन लोगों ने कुफ्र इख़्तेयार किया उनसे कह दो कि बहुत जल्द तुम (मुसलमानों के मुक़ाबले में) मग़लूब {हारे हुए} होंगे और जहन्नुम में इकट्ठे किये जाओगे और वह (क्या) बुरा ठिकाना है"

आलोचना:

- **न्याय दर्शन:** न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के कर्मों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क पर आधारित होना चाहिए। यह आयत बिना किसी प्रमाण और तर्क के यह दावा करती है कि कुफ्र करने वाले लोग जल्दी हार जाएंगे और नरक में जाएंगे। यह विचार न्याय संगत नहीं है।
- **वैशेषिक दर्शन:** वैशेषिक दर्शन में घटनाओं का विश्लेषण पदार्थों और उनके गुणों से किया जाता है। यह आयत घटनाओं के बजाय धार्मिक विश्वासों के आधार पर भविष्यवाणी करती है, जो वैशेषिक सिद्धांत से मेल नहीं खाती।
- **सांख्य योग:** सांख्य योग में कार्यों के परिणाम का विश्लेषण प्रकृति और पुरुष के सिद्धांत के अनुसार किया जाता है, लेकिन इस आयत में एक धार्मिक दृष्टिकोण से हार और नरक का उल्लेख

किया गया है, जो सांख्य सिद्धांत से मेल नहीं खाता।

- **वेदांत: वेदांत में आत्मा और ब्रह्म का अद्वैत सिद्धांत है, और यह आयत आत्मा के बीच भेदभाव की बात करती है, जो अद्वैत के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**
- **सार्वभौमिक मानवता: यह आयत धर्म और विश्वास के आधार पर भेदभाव करती है, जबकि सार्वभौमिक मानवता में सभी मनुष्यों के समान अधिकार और सम्मान की बात की जाती है।**

---

13. "बेशक तुम्हारे (समझाने के) वास्ते उन दो (मुख़ालिफ़ गिरोहों में जो (बद्र की लड़ाई में) एक दूसरे के साथ गुथ गए (रसूल की सच्चाई की) बड़ी भारी निशानी है कि एक गिरोह ख़ुदा की राह में जेहाद करता था और दूसरा काफ़रों का जिनको मुसलमान अपनी आँख से दुगना देख रहे थे (मगर ख़ुदा ने क़लील ही को फ़तह दी) और ख़ुदा अपनी मदद से जिस की चाहता है ताईद करता है बेशक आँख वालों के वास्ते इस वाक़ये में बड़ी इबरत है"

आलोचना:

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में, घटनाओं का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क के आधार पर होता है। यह आयत एक ऐतिहासिक घटना को एक धार्मिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है, जो न्याय के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**
- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में, घटनाओं और पदार्थों का विश्लेषण तर्क और कारणों पर आधारित होता है। यह आयत केवल धार्मिक दृष्टिकोण से इतिहास को देखती है, जो वैशेषिक दर्शन से मेल नहीं खाती।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग में, ध्यान और कर्म पर बल दिया जाता है। यह आयत एक युद्ध के बारे में बयान करती है, जो सांख्य योग के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**
- **वेदांत: वेदांत में ब्रह्म के सिद्धांत को महत्व दिया जाता है, और यह आयत युद्ध और कर्म के बारे में बात करती है, जो वेदांत के अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **सार्वभौमिक मानवता: यह आयत युद्ध और जिहाद की बात करती है, जो सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांत से मेल नहीं खाती, क्योंकि सार्वभौमिक मानवता में सभी मनुष्यों के बीच शांति और**

समानता का समर्थन किया जाता है।

---

14. "दुनिया में लोगों को उनकी मरग़ूब चीज़ें (मसलन) बीवियों और बेटों और सोने चाँदी के बड़े बड़े लगे हुए ढेरों और उम्दा उम्दा घोड़ों और मवेशियों और खेती के साथ उल्फत भली करके दिखा दी गई है ये सब दुनयावी ज़िन्दगी के (चन्द रोज़ा) फ़ायदे हैं और (हमेशा का) अच्छा ठिकाना तो ख़ुदा ही के यहाँ है"

आलोचनाः

- न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में, विश्व और घटनाओं का मूल्यांकन तर्क और प्रमाण के आधार पर किया जाता है। यह आयत व्यक्तियों को भौतिक सुखों की ओर आकर्षित करती है, लेकिन न्याय दर्शन के अनुसार सुख और दुख का मूल्यांकन कर्मों के आधार पर होता है, न कि भौतिक सुखों के आधार पर।
- वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में भौतिक पदार्थों और उनके गुणों का विश्लेषण किया जाता है, और यहां आयत भौतिक सुखों पर आधारित है, जो वैशेषिक दर्शन से मेल नहीं खाती।
- सांख्य योग: सांख्य योग में ध्यान और आत्मा के सिद्धांतों पर बल दिया जाता है, जबकि यह आयत भौतिक सुखों के बारे में बात करती है, जो सांख्य सिद्धांत से मेल नहीं खाती।
- वेदांत: वेदांत में आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत सिद्धांत पर बल दिया जाता है, और यह आयत भौतिक सुखों के बजाय आत्मिक सुख की बात नहीं करती, जो वेदांत के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।
- सार्वभौमिक मानवता: यह आयत भौतिक सुखों को प्रमुख बनाती है, जबकि सार्वभौमिक मानवता में आत्मिक और नैतिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है।

---

15. "उन लोगों से कह दो कि क्या मैं तुमको उन सब चीज़ों से बेहतर चीज़ बता दूं (अच्छा सुनो) जिन लोगों ने परहेज़गारी इख़्तेयार की उनके लिए उनके परवरदिगार के यहां (बेहिश्त) के वह बाग़ात हैं जिनके नीचे नहरें जारी हैं (और वह) हमेशा उनमें रहेंगे और उसके अलावा

उनके लिए साफ सुथरी बीवियां हैं और (सबसे बढ़कर) ख़ुदा की ख़ुशनूदी है और ख़ुदा (अपने) उन बन्दों को खूब देख रहा है जो दुआएं मांगा करते हैं"

आलोचना:

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में किसी भी विचार का मूल्यांकन तर्क और प्रमाण पर आधारित होता है। यह आयत बाग़ात, नहरों, बीवियों और दुआओं के आधार पर जन्नत का वर्णन करती है, जो तर्क और न्याय के सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में भौतिक तत्वों का विश्लेषण किया जाता है, लेकिन यहां आयत एक आध्यात्मिक पुरस्कार की बात करती है, जो वैशेषिक सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग में आत्मा की उन्नति और ध्यान पर बल दिया गया है,**

जबकि यह आयत भौतिक और आध्यात्मिक पुरस्कारों की बात करती है, जो सांख्य सिद्धांत से मेल नहीं खाती।

- **वेदांत: वेदांत में ब्रह्म और आत्मा के अद्वैत सिद्धांत पर बल दिया जाता है, और यहां आयत में बाहरी पुरस्कारों का वर्णन किया गया है, जो वेदांत के सिद्धांत से मेल नहीं खाती।**
- **सार्वभौमिक मानवता: यह आयत विशेष धर्म और विश्वास के आधार पर पुरस्कार देती है, जबकि सार्वभौमिक मानवता में सभी को समान सम्मान और अधिकार दिए जाते हैं।**

नीचे दी गई आलोचना तालिका में, हम इन आयतों (11-15) का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेंगे, और इसे भारतीय दर्शन शास्त्रों, जैसे कि न्याय दर्शन, पुरवा मीमांसा, वैशेषिक, सांख्य योग, उत्तर मीमांसा (वेदांत), और भगवद गीता के दृष्टिकोण से तुलना करेंगे। इसके साथ-साथ हम यह देखेंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से कैसे मेल नहीं खातीं।

आलोचना तालिका: सूरा आल-इमरान (11-15)

आयत	आलोचना (न्याय दर्शन की दृष्टि से)	आलोचना (अन्य दार्शनिक दृष्टिकोण से)	आलोचना (गीता और मानवता के दृष्टिकोण से)

आयत 11: "उनकी भी क़ौमे फ़िरऔन और उनसे पहले वालों की सी हालत है..."	- न्याय दर्शन के अनुसार, पाप का सजा निश्चित होती है, लेकिन इस आयत में कोई स्पष्ट तर्क नहीं दिया गया है कि सजा किस कारण से दी जाती है। - यह न्याय के सिद्धांत के खिलाफ है, क्योंकि न्याय का सिद्धांत तथ्यों और प्रमाणों पर आधारित होना चाहिए।	- पुरवा मीमांसा में कर्म और फलों का विचार है, परंतु यह आयत कर्म और उसके फल के बीच असंगति पैदा करती है।	- भगवद गीता में कर्म का फल स्पष्ट रूप से कहा गया है, "तुम्हें केवल कर्म करने का अधिकार है, उसका परिणाम नहीं" (भगवद गीता 2.47), जबकि यहां पाप का दंड सीधे तौर पर दानवों के साथ जोड़ दिया गया है।
आयत 12: "जिन लोगों ने कुफ्र इख़्तेयार किया उनसे कह दो कि तुम हारे हुए हो..."	- न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी संघर्ष में विजेता और पराजित के बीच तार्किक आधार होना चाहिए, लेकिन इस आयत में यह बिना किसी तर्क के पूर्वानुमान लगाया गया है।	- सांख्य योग के अनुसार, व्यक्ति की स्थिति उनके ज्ञान और कर्मों पर निर्भर होती है, लेकिन यहां यह सिर्फ विश्वास के आधार पर तय किया गया है।	- गीता के अनुसार, जो धर्म के अनुसार कार्य करता है, वही परिपूर्ण होता है, यहां विश्वास पर जोर दिया गया है।
आयत 13: "एक गिरोह ख़ुदा की राह में जेहाद करता था और दूसरा काफ़िरों का..."	- न्याय दर्शन के अनुसार, सही कारणों और स्पष्ट लक्ष्य के बिना कोई भी संघर्ष अवैध है। यह आयत धर्म युद्ध को बिना तर्क के सही ठहराती है।	- वैशेषिक दर्शन के अनुसार, सत्य और असत्य के बीच स्पष्ट अंतर होना चाहिए, लेकिन यहाँ एक पक्ष को गलत ठहराया गया है बिना स्पष्ट तर्क के।	- गीता में युद्ध को केवल धर्म के लिए करने का निर्देश है, परंतु यहाँ किसी भी तरह का तर्क नहीं दिया गया।
आयत 14:	- न्याय दर्शन के अनुसार,	- वेदांत में इस संसार	- गीता के अनुसार, भौतिक

"दुनिया में लोगों को उनकी मरग़ूब चीज़े…"	व्यक्तियों के भौतिक और मानसिक सुखों का निर्धारण उनके कर्मों पर आधारित होना चाहिए, परंतु इस आयत में भौतिक चीजों को अधिक महत्वपूर्ण दिखाया गया है।	को अस्थिर और पराया माना गया है, जबकि यह आयत भौतिक सुखों की ओर आकर्षित करती है।	सुखों के पीछे भागना माया के जाल में फंसने जैसा है (भगवद गीता 2.70), जबकि यह आयत इन्हें अधिक महत्व देती है।
आयत **15**: "क्या मैं तुमको उन सब चीज़ों से बेहतर चीज़ बता दूं…"	- न्याय दर्शन के अनुसार, किसी चीज़ की श्रेष्ठता का निर्धारण तर्क, प्रमाण और परिणामों पर होना चाहिए, जबकि यहां केवल विश्वास की बात की जा रही है।	- सांख्य योग में परिश्रम और साधना के द्वारा आत्म-साक्षात्कार की बात की जाती है, परंतु यहाँ पर सिर्फ स्वर्ग की बात की गई है।	- गीता में कहा गया है, "स्वर्ग की इच्छा से शांति की प्राप्ति नहीं होती" (भगवद गीता 15.6), जबकि यहाँ स्वर्ग को अंतिम लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष:

यह तालिका दर्शाती है कि आयतों का पालन भारतीय दर्शन शास्त्रों और भगवद गीता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता। न्याय दर्शन और अन्य शास्त्रों में कर्मों के फल का निर्धारण तर्क और प्रमाण के आधार पर होता है, जबकि इन आयतों में धार्मिक विश्वास और विश्वास के आधार पर निर्णय किए गए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यह आयतें सार्वभौमिक मानवता और तार्किक विवेक के खिलाफ हैं, क्योंकि वे सिर्फ धार्मिक और विश्वास आधारित निर्णय देती हैं बिना किसी तर्क के।

इन आयतों (16-20) की आलोचना छः दर्शनों (पूरव मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य योग, उत्तर मीमांसा, और भगवद गीता) के तर्कों से की जा सकती है। आइए इन आयतों का विश्लेषण करते हैं और यह देखने की कोशिश करते हैं कि वे इन तात्त्विक दृष्टिकोणों से कैसे मेल खाती या विरोध करती हैं:

आयत 16: "हम तो इमान लाए हैं, बस तू भी हमारे गुनाहों को बख़्श दे और हमको दोज़ख़ के अज़ाब से बचा"

विश्लेषण: यह आयत इस विचार को प्रस्तुत करती है कि जब एक व्यक्ति इमान लाता है, तो वह अपने गुनाहों को माफ़ करवाने के लिए दुआ करता है।

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में कर्म का परिणाम महत्वपूर्ण है। व्यक्ति को अपनी क्रियाओं का फल भुगतना होता है। इस आयत में केवल इमान लाने से गुनाहों की माफी की बात की गई है, जो न्याय दर्शन के अनुसार उचित नहीं है क्योंकि कर्मों के परिणाम में न्याय का होना आवश्यक है।**
- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन पदार्थों, गुणों और उनके गुणात्मक संबंधों की अवधारणा पर आधारित है। यह शारीरिक और मानसिक कारणों के बीच संबंध की बात करता है। इस आयत में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इमान लाने के साथ कोई पदार्थिक या गुणात्मक परिवर्तन होगा, जिससे व्यक्ति के गुनाह माफ़ हो सकें।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग के अनुसार, आत्मा का शुद्धिकरण और मानसिक संतुलन आत्मा की मुक्ति के लिए आवश्यक हैं। इस आयत में सिर्फ गुनाह माफ़ करने का आग्रह किया गया है, जबकि सांख्य योग के अनुसार मानसिक शुद्धता और आत्मा के ज्ञान से ही पापों का नाश होता है, न कि केवल प्रार्थना से।**

आयत 17: "ये लोग सब्र करने वाले, सच बोलने वाले, ख़ुदा के फ़रमाबरदार, ख़ुदा की राह में ख़र्च करने वाले और पिछली रातों में तौबा करने वाले हैं"

विश्लेषण: यह आयत इन गुणों के बारे में बात करती है, जैसे सब्र, सच बोलना, दान देना, तौबा करना आदि।

- **सांख्य योग: इस आयत में जो गुण बताए गए हैं, वे बाहरी गुणों के रूप में दिखाए गए हैं, जबकि सांख्य योग में आत्मा का ज्ञान और उसे प्राप्त करने के साधन पर जोर दिया जाता है। आत्मा के शुद्धिकरण के लिए बाहरी कर्मों से अधिक आंतरिक साधना महत्वपूर्ण मानी जाती है।**
- **उत्तर मीमांसा: उत्तर मीमांसा में कर्मकांड और पूजा का महत्त्व है, लेकिन यहाँ बाहरी गुणों की बात की गई है। जबकि इस दर्शन में व्यक्ति की आंतरिक स्थिति और उसके कर्मों के फल का अधिक महत्त्व है। बाहरी गुण एक मानसिक स्थिति से जुड़ी होती है, जो व्यक्ति के आंतरिक कर्मों से ही उत्पन्न होती है।**

आयत 18: "ख़ुदा और फ़रिश्तों और इल्म वालों ने गवाही दी है कि उसके सिवा कोई माबूद क़ाबिले परसतिश नहीं है"

विश्लेषण: यह आयत कहती है कि सिर्फ़ खुदा ही पूजा योग्य है और अन्य किसी को भी पूजा नहीं जानी चाहिए।

- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन ब्रह्मांड की विभिन्न वस्तुओं और उनके गुणों के बारे में बात करता है। इसके अनुसार, वस्तुएं और ब्रह्मांड के तत्व स्वयं में अस्तित्व में हैं। यह आयत जो बात कहती है, वह वैशेषिक दर्शन के एकल अस्तित्व के सिद्धांत से मेल नहीं खाती, क्योंकि इसमें वस्तु और ब्रह्मांड की विविधता की स्वीकृति दी गई है।**
- **भगवद गीता: भगवद गीता में "ईश्वर के रूप" के बारे में विशेष विवरण मिलता है, और वह यह कहती है कि ईश्वर सभी रूपों में विद्यमान हैं। यहाँ पर केवल एक ईश्वर के क़ाबिल पूजा होने की बात की गई है, जो गीता के सार्वभौमिक दृष्टिकोण से मेल नहीं खाती।**

आयत 19: "अहले किताब ने जो उस दीने हक़ से इख़्तेलाफ़ किया तो महज़ आपस की शरारत और असली (अम्र) मालूम हो जाने के बाद"

विश्लेषण: यह आयत कहती है कि जो लोग किताबों से इख्तेलाफ़ करते हैं, वे महज़ शरारत कर रहे हैं।

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन के अनुसार, हर व्यक्ति को अपने विचारों का पालन करने का अधिकार होता है। यह आयत विचारों की विविधता को स्वीकार नहीं करती, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग में आत्मज्ञान और अहंकार से मुक्ति की बात की जाती है, और यह विचार की स्वतंत्रता पर जोर देता है। इस आयत में जो असहमति और शरारत का बयान है, वह सांख्य योग के विचारों से मेल नहीं खाता।**

आयत 20: "अगर ये लोग तुमसे हुज्जत करें, तो कह दो मैंने खुदा के आगे अपना सरे तस्लीम ख़म कर दिया है और जो मेरे ताबे है, उन्होंने भी"

विश्लेषण: यह आयत पैग़ाम्बर को निर्देश देती है कि वे अपनी स्वीकार्यता का प्रमाण दें और इस्लाम के प्रति सत्यापन की प्रक्रिया की बात करें।

- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में स्वतंत्र रूप से सोचने और तर्क करने का महत्त्व है। यह आयत तर्क और स्वतंत्र विचार के बजाय एक व्यक्तिगत स्वीकार्यता पर अधिक जोर देती है, जो वैशेषिक के तात्त्विक दृष्टिकोण से मेल नहीं खाती।**
- **भगवद गीता: भगवद गीता में अपने कर्म के प्रति निःस्वार्थ भावनाओं की बात की जाती है, न कि केवल व्यक्तिवादी क़बूलियत की। इस आयत में तर्क की बजाय, स्वीकृति और समर्पण की बात की गई है, जो गीता के कर्मयोग से मेल नहीं खाती।**

निष्कर्ष:

इन आयतों का विश्लेषण छः दर्शनों और भगवद गीता के सिद्धांतों के संदर्भ में करने पर स्पष्ट होता है कि इन आयतों में दी गई कुछ अवधारणाएँ तात्त्विक दृष्टिकोणों से मेल नहीं खातीं। यह विभिन्न धार्मिक विचारों और दार्शनिक प्रणालियों से भिन्न हैं, जो विविध दृष्टिकोणों और विचारधाराओं को सम्मानित करती हैं।

आयतों (21-25) का विश्लेषण करते हुए, हम इन आयतों की तात्त्विक समीक्षा छः दर्शनों (पूरव मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य योग, उत्तर मीमांसा, और भगवद गीता) के दृष्टिकोण से करेंगे, ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि ये आयतें तर्कसंगत रूप से और दार्शनिक दृष्टिकोण से गलत हैं।

आयत 21: "जो लोग ख़ुदा की आयतों से इन्कार करते हैं और नाहक़ पैग़ाम्बरों को क़त्ल करते हैं और उन लोगों को क़त्ल करते हैं जो इन्साफ़ करने का हुक़्म करते हैं, तो उन्हें दर्दनाक अज़ाब की ख़ुशख़बरी दे दो।"

विश्लेषण: यह आयत क़त्ल और पापियों के लिए अज़ाब की चेतावनी देती है।

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को उसके कर्मों का फल भुगतना पड़ता है, लेकिन यहाँ पर क़त्ल के लिए एक सामान्य परिणाम प्रस्तुत किया गया है। न्याय दर्शन में किसी व्यक्ति के कर्मों का निष्कलंक रूप से मूल्यांकन किया जाता है, और केवल कर्म का मूल्यांकन किया जाता है, न कि व्यक्ति की पहचान या धर्म के आधार पर। इस प्रकार, यह आयत न्याय के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है क्योंकि इसमें कर्म के साथ धार्मिक विश्वासों को जोड़ा गया है।**

- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में कारण और प्रभाव के संबंध को महत्व दिया गया है। इसमें किसी विशेष कर्म के लिए तात्त्विक कारण का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। यह आयत किसी वस्तु या कर्म के कारण के बजाय कर्मों की सजा को प्राथमिकता देती है, जो वैशेषिक दर्शन के अनुसार दोषपूर्ण है।**
- **सांख्य योग: सांख्य योग के अनुसार, व्यक्तियों के कर्म उनके मानसिक और आत्मिक स्थितियों के आधार पर होते हैं। कर्मों के परिणाम केवल कर्म से जुड़े कारणों से नहीं, बल्कि आत्मिक विकास और मानसिक संतुलन के आधार पर तय होते हैं। यह आयत केवल बाहरी कर्मों (क़त्ल) पर आधारित है और तात्त्विक दृष्टि से मानसिक और आत्मिक कारकों की अनदेखी करती है।**

आयत 22: "यह वह लोग हैं जिनका सारा किया कराया दुनिया और आख़ेरत (दोनों) में अकारत गया और कोई उनका मददगार नहीं।"

विश्लेषण: यह आयत यह कहती है कि जो लोग पाप करते हैं उनका जीवन और मृत्यु दोनों अकारथ होते हैं और कोई मदद नहीं करता।

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन के अनुसार, प्रत्येक कर्म का फल निश्चित रूप से मिलता है। इसमें यह कहा गया है कि उनके कर्म निष्फल हो गए हैं, जबकि न्याय दर्शन में कर्म का फल उसी समय नहीं मिलता, बल्कि समय के हिसाब से उसका परिणाम निर्धारित होता है। इस आयत में 'अकारथ' और 'निष्फल' होने का तात्त्विक कारण नहीं बताया गया है, जो न्याय दर्शन के अनुसार अनुपयुक्त है।**
- **भगवद गीता: भगवद गीता में कहा गया है कि कर्म का फल व्यक्ति की अवस्था और भावनाओं पर निर्भर करता है। यह आयत केवल कर्म के परिणाम को दिखाती है, लेकिन गीता में व्यक्ति के मनोबल और सही उद्देश्य से कर्म करने की बात की जाती है। यहाँ पर गीता के कर्मयोग का विचार अनुपस्थित है।**

आयत 23: "क्या तुमने (उलमाए यहूद) के हाल पर नज़र नहीं की जिनको किताब (तौरेत) का एक हिस्सा दिया गया था और उन लोगों को किताबे ख़ुदा की तरफ़ बुलाया जाता है

ताकि वही उनके झगड़ें का फैसला कर दे, इस पर भी उनमें का एक गिरोह मुँह फेर लेता है और यही लोग रूगरदानी करने वाले हैं।"

विश्लेषण: यह आयत यहूदियों के बारे में है जो कि किताब को नकारते हैं और अस्वीकार करते हैं।

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में यह स्वीकार किया जाता है कि हर व्यक्ति को अपने कर्मों का न्यायसंगत फल मिलता है। यह आयत केवल एक समुदाय के कर्मों की निंदा करती है, बिना यह बताए कि उनके कर्मों का निष्कलंक मूल्यांकन किया गया है या नहीं। यह न्याय के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**

- **सांख्य योग: सांख्य योग के अनुसार, हर व्यक्ति की आत्मा और उसका विकास अलग-अलग होता है। हर व्यक्ति के अनुभव और मानसिक स्थिति को देखते हुए ही उसका कर्म का परिणाम निर्धारित होता है। इस आयत में एक समूह को दोषी ठहराया गया है, जो सांख्य योग के दृष्टिकोण से अपर्याप्त है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का मूल्यांकन अलग-अलग तरीके से किया जाता है।**

आयत 24: "ये इस वजह से है कि वह लोग कहते हैं कि हमें गिनती के चन्द दिनों के सिवा जहन्नुम की आग हरगिज़ छुएगी भी तो नहीं, जो इफ़तेरा परदाज़ी ये लोग बराबर करते आए हैं उसी ने उन्हें उनके दीन में भी धोखा दिया है।"

विश्लेषण: यह आयत उन लोगों के बारे में है जो यह मानते हैं कि वे कुछ दिनों के लिए नरक में जाएंगे और फिर बच जाएंगे।

- **सांख्य योग: इस आयत में अवगुण और माया के भ्रम को दिखाया गया है, लेकिन सांख्य योग के अनुसार, आत्मा की शुद्धता और मानसिक संतुलन ही कर्मों के परिणामों का निर्धारण करते हैं। यहां बाहरी दंड की बजाय आत्मिक शुद्धता और ज्ञान की महत्वपूर्णता की बात की जाती है।**

- **वैशेषिक दर्शन: वैशेषिक दर्शन में किसी भी परिणाम के बारे में कहने से पहले तात्त्विक कारण का स्पष्ट उल्लेख जरूरी होता है, जो कि इस आयत में अनुपस्थित है।**

आयत 25: "फिर उनकी क्या गत होगी जब हम उनको एक दिन (क़यामत) के दिन, जिसके आने में कोई शक नहीं है, इक्ट्ठा करेंगे और हर शख़्स को उसके किए का पूरा पूरा बदला दिया जाएगा और उनकी किसी तरह हक़तल्फ़ी नहीं की जाएगी।"

विश्लेषण: यह आयत क़यामत के दिन के बारे में बताती है और कहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों का पूरा-पूरा फल मिलेगा।

- **न्याय दर्शन: न्याय दर्शन में यह माना जाता है कि हर व्यक्ति के कर्मों का न्यायपूर्ण फल मिलता है, लेकिन क़यामत के दिन का सिद्धांत केवल इस्लामिक दृष्टिकोण का हिस्सा है, जबकि न्याय दर्शन का तात्त्विक विचार वास्तविक और सिद्धांत आधारित होता है, न कि धार्मिक अनुष्ठानों पर आधारित।**
- **भगवद गीता: भगवद गीता में भी कर्मफल के बारे में कहा गया है, लेकिन वहां कर्मों का फल इस जीवन में ही तय होता है, जबकि यहाँ पर क़यामत के दिन फल मिलने की बात की गई है, जो गीता के कर्मफल के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**

निष्कर्ष:

इन आयतों का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट होता है कि इन आयतों में जो विचार प्रस्तुत किए गए हैं, वे छः दर्शनों और भगवद गीता के तात्त्विक सिद्धांतों से मेल नहीं खाते। विशेष रूप से न्याय, वैशेषिक और सांख्य योग जैसे दर्शनों में कर्मों के परिणाम और आत्मिक शुद्धता पर जोर दिया जाता है, जबकि इन आयतों में केवल बाहरी कर्मों और उनके परिणाम की बात की गई है।

यहां दी गई आयतों (आयत) की अधिक विस्तृत आलोचना की गई है, जिसमें छह दर्शनों, मनुस्मृति और भगवद गीता के सिद्धांतों का पालन किया गया है। इन आयतों का तर्कसंगत मूल्यांकन किया गया है:

1. आयत 26: "तुम तो यह दुआ मांगों कि ऐ ख़ुदा तमाम आलम के मालिक तू ही जिसको चाहे सल्तनत दे और जिससे चाहे सल्तनत छीन ले और तू ही जिसको चाहे इज़्ज़त दे और जिसे चाहे ज़िल्लत दे हर तरह की भलाई तेरे ही हाथ में है बेशक तू ही हर चीज़ पर क़ादिर है।"

आलोचना:

- न्याय दर्शन् (तर्क): न्याय दर्शन् कारण और प्रभाव के रिश्ते को महत्व देता है। आयत में अल्लाह के द्वारा सत्ता और इज्जत का वितरण किया गया है, लेकिन इसका कोई तर्कसंगत कारण नहीं दिया गया है। यदि अल्लाह के पास सब कुछ नियंत्रित करने की शक्ति है, तो किसी के कर्मों का प्रभाव क्या है? न्याय के अनुसार, कर्मों का फल तर्कसंगत होना चाहिए, लेकिन इस आयत में केवल अल्लाह की इच्छा का उल्लेख किया गया है, जो तार्किक रूप से अस्पष्ट है।

- वैशेषिक: वैशेषिक दर्शन वस्तुओं और उनके कारणों पर जोर देता है। इसमें कहा गया है कि हर प्रभाव का एक कारण होता है। आयत में बिना कारण के सत्ता और सम्मान का वितरण दिखाया गया है, जो वैशेषिक के सिद्धांत से मेल नहीं खाता। वैशेषिक के अनुसार, किसी भी प्रभाव का स्पष्ट कारण होना चाहिए, जो इस आयत में नहीं दिया गया है।

- भगवद गीता: गीता में कर्म योग का सिद्धांत है, जो बताता है कि व्यक्ति को अपने कर्मों को बिना किसी परिणाम के अपेक्षाओं के करना चाहिए। आयत में अल्लाह के अधिकार का वर्णन किया गया है, लेकिन गीता में आत्मनिर्भर कर्मों और उनके परिणामों की अवधारणा है, जो इस आयत से मेल नहीं खाती। गीता के अनुसार, कार्यों के परिणाम व्यक्ति के कर्मों पर निर्भर करते हैं, न कि किसी अदृश्य सत्ता की इच्छा पर।

2. आयत 27: "तू ही रात को (बढ़ा के) दिन में दाखिल कर देता है और तू ही दिन को (बढ़ा के) रात में दाखिल करता है, तू ही बेजान (अन्डा नुत्फ़ा वग़ैरह) से जानदार को पैदा करता है और तू ही जानदार से बेजान नुत्फ़ा (वग़ैरहा) निकालता है और तू ही जिसको चाहता है बेहिसाब रोज़ी देता है।"

आलोचना:

- न्याय दर्शन्: न्याय दर्शन् में तर्क का महत्व है। इस आयत में प्रकृति की प्रक्रिया को अल्लाह के नियंत्रण में दिखाया गया है, लेकिन इसका तर्क नहीं दिया गया है कि प्राकृतिक परिवर्तन और जीवन के निर्माण का कारण क्या है। न्याय के अनुसार, प्राकृतिक घटनाओं का एक तर्कसंगत कारण होना चाहिए, जो इस आयत में नहीं दिया गया है।

- वैशेषिक: वैशेषिक दर्शन प्राकृतिक घटनाओं को स्थायी कारणों से जोड़ता है। आयत में यह कहा गया है कि अल्लाह दिन और रात को बदलता है और जीवन को उत्पन्न करता है, लेकिन वैशेषिक में किसी प्रभाव का एक निश्चित कारण होता है। प्राकृतिक घटनाओं का अल्लाह के इच्छा पर निर्भर

होना वैशेषिक दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है।

- भगवद गीता: भगवद गीता के अनुसार, जीवन और ब्रह्मांड के सभी परिवर्तन प्रकृति (प्रकृति और पुरुष) द्वारा होते हैं। गीता में कहा गया है कि संसार के सभी परिवर्तन और घटनाएं ब्रह्म के अधीन हैं, लेकिन यह प्राकृतिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी को पहचानता है। आयत में प्रकृति के बजाय केवल अल्लाह के अधीनता का वर्णन है, जो गीता के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।

3. आयत 28: "मोमिनीन, मोमिनीन को छोड़ के काफ़िरों को अपना सरपरस्त न बनाऐं और जो ऐसा करेगा तो उससे ख़ुदा से कुछ सरोकार नहीं मगर (इस क़िस्म की तदबीरों से) किसी तरह उन (के शर) से बचना चाहो तो (ख़ैर) और ख़ुदा तुमको अपने ही से डराता है और ख़ुदा ही की तरफ़ लौट कर जाना है।"

आलोचना:

- न्याय दर्शन्: न्याय दर्शन् का सिद्धांत है कि निष्कलंक तर्क से सही और गलत के बीच का अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। इस आयत में काफ़िरों से संबंध बनाने को गलत माना गया है, लेकिन इसका तर्कसंगत आधार नहीं दिया गया है। न्याय दर्शन् के अनुसार, एक व्यक्ति को अपनी सोच और कार्यों को तर्कसंगत रूप से समझाना चाहिए, न कि केवल धार्मिक आदेशों के आधार पर।

- सांख्य दर्शन: सांख्य दर्शन आत्मा और प्रकृति के बीच अंतर पर जोर देता है। इस आयत में धार्मिक विभाजन को बढ़ावा दिया गया है, जो सांख्य दर्शन के विचार से मेल नहीं खाता, क्योंकि सांख्य में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आत्मा के स्तर पर देखा जाता है, न कि धार्मिक मान्यताओं के आधार पर।

- भगवद गीता: गीता में सर्वजन को समान रूप से देखने का संदेश दिया गया है। इस आयत में धार्मिक भेदभाव की बात की गई है, जो गीता के सार्वभौमिकता और समानता के सिद्धांत से मेल नहीं खाता। गीता में किसी भी व्यक्ति को उसके कर्मों के आधार पर न्याय करने का आग्रह किया गया है, न कि धर्म के आधार पर।

4. आयत 29: "ऐ रसूल तुम उन (लोगों से) कह दो किजो कुछ तुम्हारे दिलों में है तो ख़्वाह उसे छिपाओ या ज़ाहिर करो (बहरहाल) ख़ुदा तो उसे जानता है और जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में वह (सब कुछ) जानता है और ख़ुदा हर चीज़ पर क़ादिर है।"

आलोचनाः

- **न्याय दर्शन्: न्याय दर्शन में निष्कलंक तर्क की आवश्यकता होती है। इस आयत में यह कहा गया है कि अल्लाह सभी को जानता है, लेकिन तर्क और प्रमाण की आवश्यकता का विरोध करता है। न्याय के अनुसार, हर बात को तर्क से समझाना जरूरी है, न कि केवल विश्वास पर आधारित रखना।**

- **वैशेषिकः वैशेषिक दर्शन के अनुसार, सभी घटनाओं के पीछे कारण होते हैं। इस आयत में केवल अल्लाह के ज्ञान और क्षमता का उल्लेख है, बिना यह बताए कि कैसे यह ज्ञान कार्य करता है। वैशेषिक में यह ज्ञान और उसके कारण का स्पष्ट विवरण होना चाहिए।**

- **भगवद गीताः भगवद गीता में यह कहा गया है कि भगवान का ज्ञान व्यापक होता है, लेकिन इस ज्ञान को एक उद्देश्यपूर्ण और तर्कसंगत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। गीता में कहा गया है कि आत्मा का ज्ञान सीधे अनुभव से प्राप्त होता है, जबकि आयत में केवल भगवान की शक्ति का उल्लेख है, बिना इस प्रक्रिया के किसी तर्क या अनुभव के।**

निष्कर्ष:

इन आयतों की आलोचना छह दर्शनों के आधार पर की गई है, और प्रत्येक दर्शक अपनी विशेष दृष्टि से इन आयतों में छिपी असंगतियों को उजागर करता है। ये आयतें तर्क, कारण-प्रभाव, और कर्मफल के सिद्धांतों के साथ मेल नहीं खातीं, जो इन दर्शनों के मूलभूत सिद्धांत हैं।

आयत 30:
"और उस दिन को याद रखो जिस दिन हर शख़्स जो कुछ उसने (दुनिया में) नेकी की है और जो कुछ बुराई की है उसको मौजूद पाएगा (और) आरज़ू करेगा कि काश उस की बदी और उसके दरमियान में ज़मानए दराज़ (हाएल) हो जाता और ख़ुदा तुमको अपने ही से डराता है और ख़ुदा अपने बन्दों पर बड़ा शफ़ीक़ और (मेहरबान भी) है।"

आलोचना (समीक्षा) के दृष्टिकोणः

1. न्याय दर्शन्:

- **तर्कः न्याय दर्शन् में हर प्रभाव के लिए कारण की आवश्यकता होती है, और यह तर्क का अहम हिस्सा है कि किसी भी कार्य के फल का मूल्यांकन निष्पक्षता से किया जाए। इस आयत में "बुराई और नेकी" के लिए कोई तर्कसंगत आधार या कारण नहीं दिया गया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति को उसके**

कर्मों का फल दिया जाएगा, तो तर्क यह मांगता है कि वह कर्मों का मूल्यांकन और उनकी वास्तविकता को स्पष्ट रूप से दर्शाया जाए, ताकि न्यायिक सिद्धांत की पुष्टि की जा सके।

- व्याख्या: इस आयत के अनुसार, लोग अपने बुरे कर्मों से पछताएंगे, लेकिन यह तर्क नहीं दिया गया कि क्या "बुराई" और "नेकी" का मापदंड सार्वभौमिक और न्यायसंगत है या नहीं।

2. वैशेषिक दर्शन:

- वस्तु और कारण: वैशेषिक दर्शन में प्रत्येक प्रभाव का एक स्पष्ट कारण होता है, और सभी घटनाएँ तात्त्विक रूप से परिभाषित की जाती हैं। इस आयत में, लोग अपने कर्मों का फल पाते हैं, लेकिन इसका कारण और तात्त्विक सिद्धांत स्पष्ट नहीं किया गया है। वैशेषिक के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के कर्म का परिणाम भौतिक और तात्त्विक कारणों से जुड़ा होता है, जो इस आयत में नहीं दिखाया गया है।
- व्याख्या: इस आयत में परिणामों के लिए केवल कर्मों का उल्लेख किया गया है, लेकिन कारण और प्रभाव का स्पष्ट और तार्किक विश्लेषण नहीं किया गया है।

3. सांख्य दर्शन:

- स्वतंत्रता और आत्मज्ञान: सांख्य दर्शन आत्मा और प्रकृति के बीच भेद करता है, और यह बताता है कि आत्मा केवल अपने कर्मों का फल भोगती है, जबकि प्रकृति (प्रकृति के गुण) कर्मों के परिणाम का निर्माण करती है। इस आयत में कर्मों का फल सीधे तौर पर व्यक्तियों को दिया जा रहा है, लेकिन सांख्य में यह सिद्धांत है कि परिणाम प्रकृति (गुण) के द्वारा उत्पन्न होते हैं, न कि केवल किसी उच्च शक्ति द्वारा।
- व्याख्या: आयत के मुताबिक, यह विश्वास है कि लोग अपने कर्मों का फल अपने आप भुगतेंगे, जबकि सांख्य दर्शन के अनुसार, इसके लिए प्रकृति और आत्मा के बीच के पारस्परिक संबंध को समझना आवश्यक है।

4. योग दर्शन:

- आध्यात्मिक साधना: योग दर्शन में आत्मा की शुद्धता और योग द्वारा मानसिक शांति और संतुलन की प्राप्ति पर बल दिया गया है। इस आयत में कर्मों के फल की बात की गई है, लेकिन योग दर्शन में आत्मा की शुद्धता के साथ-साथ कर्मों की आत्मा से परे शांति की प्राप्ति पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। यहाँ पर केवल कर्मों के परिणामों का वर्णन किया गया है, लेकिन आत्मा के अद्वितीय अनुभव को ध्यान में नहीं रखा गया है।

- **व्याख्या:** योग के सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति अपने आंतरिक अनुभव से कर्मों के परिणामों को शांति से अनुभव करता है, जबकि इस आयत में केवल बाहरी परिणामों पर ध्यान दिया गया है।

5. उत्तरा मीमांसा (वेदांत):

- **धर्म और कर्म का संबंध:** वेदांत में यह माना जाता है कि धर्म और कर्म दोनों आत्मा के आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए आवश्यक होते हैं। इस आयत में कर्मों के परिणामों का उल्लेख किया गया है, लेकिन वेदांत के सिद्धांत में आत्मा के मोक्ष के लिए कर्मों की आवश्यकता और उनके आध्यात्मिक परिणाम पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है।
- **व्याख्या:** वेदांत में कर्मों का मूल्यांकन आत्मा की उन्नति और ज्ञान की प्राप्ति के दृष्टिकोण से किया जाता है, जबकि इस आयत में केवल कर्मों के परिणामों के भौतिक पहलुओं पर जोर दिया गया है।

6. भगवद गीता:

- **कर्म योग:** भगवद गीता में कर्म योग का सिद्धांत है, जो बताता है कि कर्मों को फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। गीता के अनुसार, किसी व्यक्ति को अपने कर्मों का फल नहीं चाहिए, बल्कि उसे अपनी जिम्मेदारी पूरी करनी चाहिए। आयत में कर्मों के परिणाम को व्यक्त किया गया है, जबकि गीता में कर्मों को बिना फल की इच्छा के करने का आह्वान किया गया है।
- **व्याख्या:** गीता में कर्मों का फल भगवान पर छोड़ने की बात की गई है, जबकि इस आयत में कर्मों का फल व्यक्ति को ही दिए जाने का संदर्भ है।

निष्कर्ष:

इस आयत में कर्मों के परिणाम का एक बहुत ही सामान्य और आधिकारिक ढंग से उल्लेख किया गया है, लेकिन विभिन्न दर्शनों की दृष्टि से यह अस्पष्ट और असंगत प्रतीत होता है। न्याय दर्शन्, वैशेषिक, सांख्य, योग और वेदांत सभी में कर्मों और उनके परिणामों को समझने के लिए अधिक परिष्कृत और स्पष्ट सिद्धांत हैं। इन सिद्धांतों के अनुसार, कर्मों का फल केवल एक उच्च शक्ति के द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता, बल्कि यह एक निश्चित कारण और प्रभाव के सिद्धांत पर आधारित होता है, जो आयत में नहीं बताया गया है।

आयतों का विश्लेषण और आलोचना:

आयत 36-40 में जो वर्णन किया गया है, उसमें मरियम (माँ) के जन्म के बाद उसके साथ हुई घटनाएँ, उसके परवरदिगार से सुरक्षा की दुआ, ज़करिया की दुआ और फ़रिश्तों से उसका संवाद है। इसमें बेतरतीब तर्कों

और असंगत कथनों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें हम विभिन्न दर्शनों और तर्कशास्त्रों के आधार पर आलोचित कर सकते हैं।

आलोचना के दृष्टिकोण:

1. न्याय दर्शन् (Nyaya Darshan):

- **तर्क:** न्याय दर्शन् में वास्तविकता को सही ढंग से प्रमाणित करना ज़रूरी होता है, और किसी भी स्थिति में ठीक कारण और प्रभाव की श्रृंखला को स्थापित किया जाता है। इस आयत में मरियम के जन्म और ज़करिया की दुआ का संबंध बिना किसी तात्त्विक आधार के प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, मरियम के पास खाने का सामान अचानक आना और यह कहना कि "यह खुदा से आया है", इसे तार्किक रूप से पुष्टि नहीं की जाती है।
- **व्याख्या:** न्याय दर्शन् के अनुसार, कोई भी घटना तात्त्विक प्रमाण के बिना समझी नहीं जा सकती। इस आयत में बिना किसी भौतिक या तात्त्विक व्याख्या के तात्त्विक साक्ष्य नहीं दिए गए हैं। यदि कोई वस्तु या घटना किसी से आती है, तो उसका स्पष्ट कारण और प्रभाव होना चाहिए, जैसा कि न्याय दर्शन् में कहा गया है।

2. वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika Darshan):

- **वस्तु और कारण:** वैशेषिक दर्शन में प्रत्येक चीज़ का एक कारण होता है, और इसे किसी भौतिक गुण, रूप, या अस्तित्व के द्वारा समझा जाता है। इस आयत में मरियम के पास अचानक भोजन का आना बिना किसी भौतिक या पदार्थिक कारण के प्रस्तुत किया गया है, जो वैशेषिक दृष्टि से अव्याख्येय है।
- **व्याख्या:** वैशेषिक दर्शन के अनुसार, किसी भी घटना का एक भौतिक कारण होना चाहिए, जो यहाँ पर नहीं दिखाई देता। भोजन का आना बिना किसी कारण के तार्किक रूप से स्वीकार्य नहीं है।

3. सांख्य दर्शन (Sankhya Darshan):

- **आध्यात्मिक प्रगति और कारण:** सांख्य दर्शन में आत्मा और प्रकृति के बीच का अंतर स्पष्ट किया गया है, और यह बताया गया है कि आत्मा अपने कार्यों के परिणामों के आधार पर प्रगति करती है। इस आयत में धार्मिक विश्वासों और अदृश्य घटनाओं का उल्लेख किया गया है, लेकिन सांख्य दर्शन के अनुसार आत्मा को स्वयं अपनी प्रगति और कर्मों से जुड़ा रहना चाहिए।
- **व्याख्या:** इस आयत में आत्मा के कार्यों और उनकी प्रगति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार, आत्मा की स्वतंत्रता और कर्मों का प्रभाव होना चाहिए, जबकि आयत में इसका पालन नहीं दिखता।

4. योग दर्शन (Yoga Darshan):

- **आध्यात्मिक साधना और मानसिक स्थिति: योग दर्शन में आत्मा की शुद्धता और योग द्वारा मानसिक शांति की प्राप्ति पर बल दिया गया है। यह आयत कहती है कि खाने का सामान एक दिव्य शक्ति से आया, लेकिन योग दर्शन के अनुसार, आत्मा की शुद्धता और मानसिक स्थिति को सुधारने के लिए आंतरिक साधना और ध्यान की आवश्यकता होती है, न कि बाहरी तत्वों के कारण।**
- **व्याख्या: योग के सिद्धांत के अनुसार, आत्मा की उन्नति और मानसिक संतुलन व्यक्तिगत साधना पर निर्भर करते हैं, न कि किसी बाहरी आशीर्वाद या दिव्य शक्ति पर।**

5. वेदांत दर्शन (Vedanta Darshan):

- **आध्यात्मिक दृष्टिकोण: वेदांत दर्शन के अनुसार, आत्मा ब्रह्म से अविभाज्य है, और आत्मा के अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान और मोक्ष है। इस आयत में विशेष रूप से बुनियादी आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता के बारे में चर्चा नहीं की गई है। सिर्फ़ कर्मों और घटनाओं को बिना किसी आध्यात्मिक व्याख्या के प्रस्तुत किया गया है।**
- **व्याख्या: वेदांत दर्शन के अनुसार, इस प्रकार की घटनाएँ आध्यात्मिक ज्ञान और आत्मा के ब्रह्म के साथ एकता से संबंधित होनी चाहिए, जबकि यहाँ केवल कर्मों और खाद्य पदार्थों के द्वारा वास्तविकता को प्रस्तुत किया गया है।**

6. भगवद गीता (Bhagavad Gita):

- **कर्म और फल: भगवद गीता में कर्म को फल की इच्छा के बिना करना महत्वपूर्ण बताया गया है। आयत में कर्मों का फ़ल सीधे तौर पर भगवान से जुड़ा दिखाया गया है, लेकिन गीता के सिद्धांत के अनुसार, कर्मों को फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। गीता में कर्मों का फल ईश्वर के हाथों में सौंपने की बात की जाती है।**
- **व्याख्या: गीता के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को फल की आशा के बिना अपने कर्म करने चाहिए, जबकि आयत में कर्मों के परिणामों को सिर्फ ईश्वर की इच्छा से जोड़ दिया गया है।**

निष्कर्ष:

इस आयत में धर्म, कर्म और ईश्वर के कार्यों के लिए कोई ठोस तात्त्विक या भौतिक कारणों का उल्लेख नहीं किया गया है। विभिन्न दर्शनों के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह आयत न केवल असंगत है, बल्कि तर्क और प्रमाण से रहित भी प्रतीत होती है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत और भगवद गीता में कर्मों और उनके

परिणामों की अधिक स्पष्ट और न्यायपूर्ण व्याख्या की जाती है, जबकि इस आयत में केवल ईश्वर की इच्छा के आधार पर घटनाएँ घटित होती दिखाई जाती हैं, जो कि तर्कशास्त्र के सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं।

आयतों का विश्लेषण और आलोचना:

आयत 36-40 में जो वर्णन किया गया है, उसमें मरियम (माँ) के जन्म के बाद उसके साथ हुई घटनाएँ, उसके परवरदिगार से सुरक्षा की दुआ, ज़करिया की दुआ और फ़रिश्तों से उसका संवाद है। इसमें बेतरतीब तर्कों और असंगत कथनों का उल्लेख किया गया है, जिन्हें हम विभिन्न दर्शनों और तर्कशास्त्रों के आधार पर आलोचित कर सकते हैं।

आलोचना के दृष्टिकोण:

1. न्याय दर्शन् (Nyaya Darshan):

- तर्क: न्याय दर्शन् में वास्तविकता को सही ढंग से प्रमाणित करना ज़रूरी होता है, और किसी भी स्थिति में ठीक कारण और प्रभाव की श्रृंखला को स्थापित किया जाता है। इस आयत में मरियम के जन्म और ज़करिया की दुआ का संबंध बिना किसी तात्त्विक आधार के प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, मरियम के पास खाने का सामान अचानक आना और यह कहना कि "यह खुदा से आया है", इसे तार्किक रूप से पुष्टि नहीं की जाती है।
- व्याख्या: न्याय दर्शन् के अनुसार, कोई भी घटना तात्त्विक प्रमाण के बिना समझी नहीं जा सकती। इस आयत में बिना किसी भौतिक या तात्त्विक व्याख्या के तात्त्विक साक्ष्य नहीं दिए गए हैं। यदि कोई वस्तु या घटना किसी से आती है, तो उसका स्पष्ट कारण और प्रभाव होना चाहिए, जैसा कि न्याय दर्शन् में कहा गया है।

2. वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika Darshan):

- वस्तु और कारण: वैशेषिक दर्शन में प्रत्येक चीज़ का एक कारण होता है, और इसे किसी भौतिक गुण, रूप, या अस्तित्व के द्वारा समझा जाता है। इस आयत में मरियम के पास अचानक भोजन का आना बिना किसी भौतिक या पदार्थिक कारण के प्रस्तुत किया गया है, जो वैशेषिक दृष्टि से अव्याख्येय है।
- व्याख्या: वैशेषिक दर्शन के अनुसार, किसी भी घटना का एक भौतिक कारण होना चाहिए, जो यहाँ पर नहीं दिखाई देता। भोजन का आना बिना किसी कारण के तार्किक रूप से स्वीकार्य नहीं है।

3. सांख्य दर्शन (Sankhya Darshan):

- **आध्यात्मिक प्रगति और कारण: सांख्य दर्शन में आत्मा और प्रकृति के बीच का अंतर स्पष्ट किया गया है, और यह बताया गया है कि आत्मा अपने कार्यों के परिणामों के आधार पर प्रगति करती है। इस आयत में धार्मिक विश्वासों और अदृश्य घटनाओं का उल्लेख किया गया है, लेकिन सांख्य दर्शन के अनुसार आत्मा को स्वयं अपनी प्रगति और कर्मों से जुड़ा रहना चाहिए।**
- **व्याख्या: इस आयत में आत्मा के कार्यों और उनकी प्रगति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार, आत्मा की स्वतंत्रता और कर्मों का प्रभाव होना चाहिए, जबकि आयत में इसका पालन नहीं दिखता।**

4. योग दर्शन (Yoga Darshan):

- **आध्यात्मिक साधना और मानसिक स्थिति: योग दर्शन में आत्मा की शुद्धता और योग द्वारा मानसिक शांति की प्राप्ति पर बल दिया गया है। यह आयत कहती है कि खाने का सामान एक दिव्य शक्ति से आया, लेकिन योग दर्शन के अनुसार, आत्मा की शुद्धता और मानसिक स्थिति को सुधारने के लिए आंतरिक साधना और ध्यान की आवश्यकता होती है, न कि बाहरी तत्वों के कारण।**
- **व्याख्या: योग के सिद्धांत के अनुसार, आत्मा की उन्नति और मानसिक संतुलन व्यक्तिगत साधना पर निर्भर करते हैं, न कि किसी बाहरी आशीर्वाद या दिव्य शक्ति पर।**

5. वेदांत दर्शन (Vedanta Darshan):

- **आध्यात्मिक दृष्टिकोण: वेदांत दर्शन के अनुसार, आत्मा ब्रह्म से अविभाज्य है, और आत्मा के अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान और मोक्ष है। इस आयत में विशेष रूप से बुनियादी आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता के बारे में चर्चा नहीं की गई है। सिर्फ़ कर्मों और घटनाओं को बिना किसी आध्यात्मिक व्याख्या के प्रस्तुत किया गया है।**
- **व्याख्या: वेदांत दर्शन के अनुसार, इस प्रकार की घटनाएँ आध्यात्मिक ज्ञान और आत्मा के ब्रह्म के साथ एकता से संबंधित होनी चाहिए, जबकि यहाँ केवल कर्मों और खाद्य पदार्थों के द्वारा वास्तविकता को प्रस्तुत किया गया है।**

6. भगवद गीता (Bhagavad Gita):

- **कर्म और फल: भगवद गीता में कर्म को फल की इच्छा के बिना करना महत्वपूर्ण बताया गया है। आयत में कर्मों का फ़ल सीधे तौर पर भगवान से जुड़ा दिखाया गया है, लेकिन गीता के सिद्धांत के अनुसार, कर्मों को फल की इच्छा के बिना करना चाहिए। गीता में कर्मों का फल ईश्वर के हाथों में सौंपने की बात की जाती है।**

- **व्याख्या:** गीता के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को फल की आशा के बिना अपने कर्म करने चाहिए, जबकि आयत में कर्मों के परिणामों को सिर्फ ईश्वर की इच्छा से जोड़ दिया गया है।

निष्कर्ष:

इस आयत में धर्म, कर्म और ईश्वर के कार्यों के लिए कोई ठोस तात्त्विक या भौतिक कारणों का उल्लेख नहीं किया गया है। विभिन्न दर्शनों के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह आयत न केवल असंगत है, बल्कि तर्क और प्रमाण से रहित भी प्रतीत होती है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत और भगवद गीता में कर्मों और उनके परिणामों की अधिक स्पष्ट और न्यायपूर्ण व्याख्या की जाती है, जबकि इस आयत में केवल ईश्वर की इच्छा के आधार पर घटनाएँ घटित होती दिखाई जाती हैं, जो कि तर्कशास्त्र के सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं।

आयत 30-35 का विश्लेषण और आलोचना विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों के आधार पर प्रस्तुत है। इसमें प्रत्येक आयत को न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत और भगवद गीता के सिद्धांतों के अनुसार तर्कपूर्ण ढंग से चुनौती दी जाएगी।

आयत 30 का विश्लेषण:

> "और उस दिन को याद रखो जिस दिन हर शख़्स जो कुछ उसने (दुनिया में) नेकी की है और जो कुछ बुराई की है उसको मौजूद पाएगा।"

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क:** न्याय दर्शन में किसी भी कर्म के फल को उसकी तात्त्विक व्याख्या और साक्ष्य के साथ प्रमाणित किया जाता है। यहाँ केवल यह कहा गया है कि कर्म के फल (अच्छे या बुरे) व्यक्ति को मिलेंगे, परंतु इन फलित घटनाओं को तर्कसंगत रूप से प्रमाणित नहीं किया गया है।
- **आलोचना:** यह दावा बिना किसी तात्त्विक और साक्ष्यपूर्ण आधार के किया गया है। न्याय दर्शन यह कहता है कि कर्म का फल समय, स्थान और स्थिति पर निर्भर करता है, जिसे यहाँ अनदेखा किया गया है।

भगवद गीता:

- **तर्क:** गीता में स्पष्ट कहा गया है कि कर्म का फल ईश्वर के प्रति समर्पित होकर बिना किसी इच्छा के होना चाहिए। यहाँ फल की प्राप्ति की बात की गई है, जिससे व्यक्ति फल की इच्छा से कर्म करेगा, जो गीता के कर्म योग के सिद्धांत के विपरीत है।

- आलोचना: फल की यह धारणा गीता के "निष्काम कर्म" के सिद्धांत का खंडन करती है।

आयत 31 का विश्लेषण:

> "अगर तुम ख़ुदा को दोस्त रखते हो तो मेरी पैरवी करो कि ख़ुदा (भी) तुमको दोस्त रखेगा और तुम्हारे गुनाह बख़्श देगा।"

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- तर्क: वैशेषिक दर्शन कर्म और उनके परिणामों को भौतिक कारणों से जोड़ता है। यहाँ "पैरवी" को गुनाह माफ़ी का कारण बताया गया है, जो वैशेषिक दृष्टिकोण से बिना किसी वस्तुगत तर्क के है।
- आलोचना: यह धारणा कि "किसी इंसान (रसूल) की पैरवी" करने से ईश्वर व्यक्ति को माफ़ कर देगा, वैशेषिक के कारण-परिणाम के सिद्धांत का उल्लंघन करती है।

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- तर्क: सांख्य दर्शन के अनुसार, आत्मा को स्वतंत्रता और ज्ञान के माध्यम से अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। यहाँ गुनाह माफ़ करने का वादा आत्मा की प्रगति को बाधित करता है।
- आलोचना: यह कथन आत्मा की व्यक्तिगत जिम्मेदारी और कर्म सिद्धांत को कमजोर करता है।

आयत 32 का विश्लेषण:

> "ख़ुदा और रसूल की फ़रमाबरदारी करो।"

योग दर्शन (Yoga):

- तर्क: योग दर्शन में आत्मा को उसके साधन और तपस्या के माध्यम से प्रगति की बात कही जाती है। यहाँ ईश्वर और रसूल की "फ़रमाबरदारी" को आत्मा की प्रगति का साधन बताया गया है, जो योग की स्वतंत्र साधना और आत्म-अनुशासन के सिद्धांत के विपरीत है।
- आलोचना: योग में आत्मा की प्रगति स्वयं की साधना और ध्यान पर आधारित है। इस्लामिक "आज्ञापालन" की अवधारणा योग के आत्मनिर्भरता सिद्धांत का विरोध करती है।

आयत 33 का विश्लेषण:

> "बेशक ख़ुदा ने आदम, नूह, इब्राहीम और इमरान के खानदान को चुना।"

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क:** वेदांत दर्शन कहता है कि ब्रह्मांड में कोई व्यक्ति या समूह विशेष ईश्वर का चुना हुआ नहीं होता। हर आत्मा ब्रह्म के साथ एक है। यहाँ कुछ परिवारों को "चुना हुआ" बताना वेदांत के सिद्धांत के विरुद्ध है।
- **आलोचना:** यह कथन ईश्वर की समानता और निष्पक्षता की अवधारणा का खंडन करता है।

आयत 35 का विश्लेषण:

> "इमरान की बीवी ने अर्ज़ की कि मेरे पेट में जो बच्चा है उसे मैं तेरी नज़र करती हूँ।"

भगवद गीता:

- **तर्क:** गीता में किसी भी कर्म को ईश्वर को समर्पित करने की बात कही गई है, परंतु यह कर्म निष्काम होना चाहिए। यहाँ "बच्चे को ईश्वर को समर्पित करना" स्वार्थपूर्ण उद्देश्य का प्रतीक है।
- **आलोचना:** गीता के अनुसार, यह कर्म पूर्णतः व्यक्तिगत इच्छा पर आधारित है और ईश्वर की निष्पक्षता के साथ मेल नहीं खाता।

सारांश और तुलना (तालिका):

आयत	दर्शन	तर्क और आलोचना
30	**न्याय, गीता**	**कर्म के फल का उल्लेख बिना साक्ष्य और तर्क के किया गया। निष्काम कर्म के सिद्धांत का उल्लंघन।**
31	**वैशेषिक, सांख्य**	**पैरवी के आधार पर गुनाह माफ़ी का तर्क वैशेषिक के कारण-परिणाम नियम के विरुद्ध।**
32	**योग**	**आत्मा की स्वतंत्र प्रगति के विपरीत "आज्ञापालन" की मांग।**

33	**वेदांत**	**"चुने हुए परिवार" की अवधारणा ईश्वर की निष्पक्षता के विरुद्ध।**
35	**गीता**	**बच्चे को ईश्वर को "नज़र" करने का तर्क निष्काम कर्म सिद्धांत का उल्लंघन करता है।**

निष्कर्ष:

आयत 30-35 विभिन्न दर्शनों के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती हैं। इन आयतों में कर्म, ईश्वर और फल की धारणा असंगत और तात्त्विक प्रमाणों से रहित है। न्याय, योग, सांख्य, वेदांत, वैशेषिक और गीता के सिद्धांतों के अनुसार, ये कथन तर्क और प्रमाण आधारित विश्वदृष्टि के साथ मेल नहीं खाते।

आयत 36-40 का विश्लेषण और आलोचना विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों के आधार पर प्रस्तुत है। इसमें प्रत्येक आयत को न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत और भगवद गीता के सिद्धांतों के अनुसार तर्कपूर्ण ढंग से चुनौती दी जाएगी।

आयत 36 का विश्लेषण:

> **"फिर जब वह बेटी जन चुकी तो (हैरत से) कहने लगी ऐ मेरे परवरदिगार (मैं क्या करू) मैं तो ये लड़की जनी हूँ और लड़का लड़की के जैसा (गया गुज़रा) नहीं होता।"**

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क: न्याय दर्शन समानता, कर्मफल, और तात्त्विक प्रमाण पर आधारित है। यह कथन लड़के को लड़की से श्रेष्ठ मानता है, जो न्याय के तर्कों के खिलाफ है।**
- **आलोचना: लड़का और लड़की के बीच भेदभाव तर्क और प्रमाण के आधार पर अस्वीकार्य है। न्याय दर्शन में स्त्री और पुरुष को समान मानते हुए उनके कर्म के आधार पर न्याय करने की बात कही गई है।**

भगवद गीता:

- **तर्क: गीता में आत्मा का लिंग रहित और सभी के लिए समान कहा गया है। यहाँ लड़की को "कमतर" मानना आत्मा की समानता के सिद्धांत के विपरीत है।**
- **आलोचना: यह विचार गीता की "समत्व" (समानता) की शिक्षा का खंडन करता है।**

आयत 37 का विश्लेषण:

> "तो उसके परवरदिगार ने मरियम को खुश होकर कबूल किया और उनकी परवरिश अच्छी तरह की।"

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क:** वैशेषिक दर्शन प्रकृति के स्वाभाविक नियमों पर बल देता है। यहाँ ईश्वर के "खुश होकर" किसी को स्वीकारने की बात तर्कहीन और पक्षपातपूर्ण लगती है।
- **आलोचना:** ईश्वर का पक्षपातपूर्ण होना वैशेषिक दर्शन के नियम आधारित दृष्टिकोण से असंगत है।

योग दर्शन (Yoga):

- **तर्क:** योग दर्शन में कर्म और साधना के आधार पर आत्मा की प्रगति की बात कही गई है। "ईश्वर की खुशी" को किसी व्यक्ति की परवरिश से जोड़ना योग के आत्मनिर्भरता सिद्धांत के विपरीत है।
- **आलोचना:** यहाँ आत्मा की प्रगति को बाहरी कारकों पर निर्भर दिखाया गया है, जो योग के सिद्धांत के विरुद्ध है।

आयत 38 का विश्लेषण:

> "ज़करिया ने दुआ की, ऐ मेरे परवरदिगार, मुझे पाकीज़ा औलाद अता फरमा।"

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क:** सांख्य दर्शन के अनुसार, सृष्टि का हर कार्य प्रकृति के नियमों और कारण-परिणाम पर निर्भर है। यहाँ "दुआ" के माध्यम से औलाद मांगने की बात प्राकृतिक नियमों को नकारती है।
- **आलोचना:** औलाद का जन्म प्राकृतिक और जैविक प्रक्रिया पर आधारित है। दुआ द्वारा इसे प्राप्त करने का तर्क सांख्य के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

भगवद गीता:

- **तर्क:** गीता में निष्काम कर्म का सिद्धांत दिया गया है। यहाँ औलाद पाने की इच्छा से किया गया कर्म गीता के इस सिद्धांत के विपरीत है।

- **आलोचना: इच्छाओं से प्रेरित कर्म गीता की शिक्षा का खंडन करता है।**

आयत 39 का विश्लेषण:

> **"ख़ुदा तुमको यहया (के पैदा होने) की खुशख़बरी देता है।"**

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क: वेदांत में हर आत्मा को समान और ब्रह्म के साथ एक बताया गया है। यहाँ "विशेष" औलाद की घोषणा वेदांत के सिद्धांत के विपरीत है।**
- **आलोचना: ईश्वर का किसी को विशेष औलाद देना वेदांत की निष्पक्षता की धारणा का उल्लंघन करता है।**

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क: न्याय दर्शन किसी भी घटना को प्रमाण, तर्क और अनुभव के आधार पर सिद्ध करता है। यहाँ "खुशखबरी" देने का तर्क साक्ष्यहीन है।**
- **आलोचना: बिना साक्ष्य के भविष्यवाणी न्याय दर्शन के तात्त्विक नियमों का खंडन करती है।**

आयत 40 का विश्लेषण:

> **"ज़करिया ने कहा, परवरदिगार मुझे लड़का कैसे हो सकता है जबकि मेरी बीवी बांझ है। ख़ुदा ने कहा, मैं जो चाहता हूँ करता हूँ।"**

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क: वैशेषिक दर्शन में प्राकृतिक कारणों और जैविक प्रक्रियाओं पर आधारित नियमों को महत्व दिया गया है। बांझ स्त्री का संतान जन्म बिना वैज्ञानिक प्रक्रिया के असंभव है।**
- **आलोचना: "ईश्वर जो चाहता है, करता है" का तर्क वैशेषिक दर्शन के स्वाभाविक नियमों और कारण-परिणाम पर आधारित सिद्धांत के खिलाफ है।**

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क: सांख्य दर्शन प्रकृति के स्वाभाविक नियमों को अपरिवर्तनीय मानता है। यहाँ प्रकृति के नियमों को "ईश्वर की इच्छा" से बदलने की बात कही गई है।**
- **आलोचना: प्रकृति के नियमों को चुनौती देना सांख्य दर्शन के सिद्धांत के विपरीत है।**

सारांश और तुलना (तालिका):

आयत	दर्शन	तर्क और आलोचना
36	न्याय, गीता	लड़के को लड़की से श्रेष्ठ मानना समानता के सिद्धांत के खिलाफ।
37	वैशेषिक, योग	ईश्वर का पक्षपातपूर्ण होना और आत्मा की प्रगति को बाहरी कारकों पर निर्भर दिखाना।
38	सांख्य, गीता	दुआ द्वारा औलाद मांगना प्राकृतिक और निष्काम कर्म सिद्धांत के विपरीत।
39	वेदांत, न्याय	विशेष औलाद की घोषणा वेदांत की निष्पक्षता और न्याय के तर्कों के खिलाफ।
40	वैशेषिक, सांख्य	प्रकृति के नियमों को "ईश्वर की इच्छा" से बदलना असंगत।

निष्कर्ष:

आयत 36-40 का तात्त्विक और तर्कसंगत विश्लेषण दर्शाता है कि इनमें व्यक्त किए गए विचार न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत और भगवद गीता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते। इनमें प्राकृतिक नियमों, आत्मा की स्वतंत्रता, और निष्पक्षता के सिद्धांतों का खंडन किया गया है।

आयत 41-45 का विश्लेषण और आलोचना विभिन्न दार्शनिक और तात्त्विक दृष्टिकोणों के आधार पर प्रस्तुत है। इनमें न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वेदांत दर्शन, और भगवद गीता के सिद्धांतों का उपयोग किया गया है।

आयत 41 का विश्लेषण:

> ”ज़करिया ने अर्ज़ की, परवरदिगार मेरे इत्मीनान के लिए कोई निशानी मुक़र्रर फ़रमा। इरशाद हुआ: तुम्हारी निशानी ये है कि तुम तीन दिन तक लोगों से बात न कर सकोगे मगर इशारे से।”

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क:** न्याय दर्शन में तर्क, प्रमाण, और अनुभव के आधार पर सत्य की खोज की जाती है। यहाँ ”निशानी” के रूप में तीन दिन तक बोलने में असमर्थता का कोई तार्किक आधार नहीं है।
- **आलोचना:** कोई व्यक्ति क्योंकर तीन दिन तक इशारे से बात करेगा और यह कैसे प्रमाणित करेगा कि यह ईश्वर की निशानी है? यह न्याय दर्शन के तर्क और प्रमाण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क:** सांख्य दर्शन के अनुसार, प्रकृति और पुरुष के नियमों के अनुसार घटनाएँ घटती हैं। ”निशानी” के रूप में बोलने की शक्ति छीन लेना प्रकृति के नियमों के विपरीत है।
- **आलोचना:** सांख्य दर्शन का मुख्य सिद्धांत यह है कि प्रकृति स्वाभाविक रूप से कार्य करती है। ईश्वर की ”निशानी” के रूप में घटना असंगत है।

आयत 42 का विश्लेषण:

> ”फरिश्तों ने मरियम से कहा, ऐ मरियम! तुम्हें खुदा ने चुना और सारे गुनाहों से पाक कर दिया।”

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क:** वेदांत में सभी आत्माओं को ब्रह्म के समान माना गया है। यहाँ एक व्यक्ति को चुनकर उसे ”पाक” करना अन्य आत्माओं के साथ भेदभाव दिखाता है।
- **आलोचना:** यह सिद्धांत वेदांत के ”सर्वात्मा समता” (सभी आत्माओं की समानता) के सिद्धांत के विपरीत है। ईश्वर का पक्षपातपूर्ण होना वेदांत दर्शन में अस्वीकार्य है।

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क:** बिना किसी साक्ष्य के यह दावा करना कि मरियम ”पाक” हैं, न्याय दर्शन के तर्कसंगत प्रमाण और तात्त्विक सत्य की खोज का उल्लंघन है।
- **आलोचना:** किसी को गुनाहों से ”पाक” घोषित करना बिना तर्क और साक्ष्य के केवल पक्षपातपूर्ण निर्णय है।

आयत 43 का विश्लेषण:

> "मरियम, अपने परवरदिगार की फरमाबरदारी करो और रुकू करने वालों के साथ रुकू करो।"

योग दर्शन (Yoga):

- **तर्क:** योग दर्शन में ईश्वर की भक्ति का स्थान व्यक्तिगत साधना और ध्यान पर आधारित है। यहाँ दूसरों के साथ "रुकू" करने की बात स्वतंत्र साधना के सिद्धांत के विरुद्ध है।
- **आलोचना:** योग दर्शन में आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र साधना पर बल दिया गया है। "सामूहिक उपासना" की अनिवार्यता योग दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती।

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क:** सांख्य दर्शन में आत्मा की मुक्ति के लिए स्वाध्याय और विवेक आवश्यक हैं। सामूहिक रूप से रुकू करने की बाध्यता आत्मा की स्वतंत्रता के खिलाफ है।
- **आलोचना:** यह आत्मा की स्वतंत्रता और स्व-निर्भरता के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

आयत 44 का विश्लेषण:

> "(ऐ रसूल!) ये ख़बर ग़ैब की ख़बरों में से है, जो हमने 'वही' के ज़रिए भेजी। तुम मरियम के सरपरस्तों के झगड़े के समय मौजूद नहीं थे।"

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क:** न्याय दर्शन में ग़ैब (अदृश्य) या 'वही' के माध्यम से दी गई जानकारी को प्रमाणित करने के लिए तर्क और अनुभव आवश्यक हैं। यहाँ "ग़ैब की ख़बर" का दावा बिना साक्ष्य के किया गया है।
- **आलोचना:** ग़ैब की सूचना को बिना प्रमाण और तर्क के स्वीकार करना न्याय दर्शन के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क:** वैशेषिक दर्शन भौतिक और साक्ष्य आधारित वास्तविकता पर आधारित है। "ग़ैब की ख़बर" का दावा इस दर्शन के अनुभव और प्रमाण के नियमों के विपरीत है।

- **आलोचना: इस आयत में तर्क या भौतिक प्रमाण का अभाव है, जो वैशेषिक दर्शन की वैज्ञानिक सोच के ख़िलाफ है।**

आयत 45 का विश्लेषण:

> **"फरिश्तों ने मरियम से कहा: ईश्वर तुम्हें एक पुत्र की खुशखबरी देता है, जो दुनिया और आख़िरत में सम्मानित और ईश्वर के निकट होगा।"**

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क: वेदांत में आत्मा का मूल्य उसके कर्मों से निर्धारित होता है, न कि जन्म या ईश्वर की "खुशखबरी" से। यहाँ किसी को "पैदा होने से पहले सम्मानित" कहना वेदांत के कर्म सिद्धांत का विरोध करता है।**
- **आलोचना: आत्मा का महत्व उसके कर्म और साधना पर निर्भर है। जन्म से पहले किसी आत्मा को विशेष दर्जा देना वेदांत के सिद्धांत का खंडन करता है।**

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क: न्याय दर्शन में हर घटना के लिए कारण और प्रमाण की आवश्यकता है। यहाँ "ईश्वर के निकट" होने का दावा बिना प्रमाण के है।**
- **आलोचना: यह दावा न्याय दर्शन के सत्यापन सिद्धांत को चुनौती देता है।**

सारांश और तुलना (तालिका):

आयत	दर्शन	तर्क और आलोचना
41	**न्याय, सांख्य**	**"निशानी" के रूप में तीन दिन तक बोलने में असमर्थता तर्क और प्रकृति के नियमों के ख़िलाफ।**
42	**वेदांत, न्याय**	**मरियम को "पाक" और "चुना हुआ" घोषित करना वेदांत और न्याय के सिद्धांतों के विपरीत।**
43	**योग, सांख्य**	**सामूहिक उपासना की बाध्यता आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता के सिद्धांतों के विरुद्ध।**

44	**न्याय, वैशेषिक**	**ग़ैब की ख़बर का दावा बिना प्रमाण के तर्क और वैज्ञानिक सोच के खिलाफ।**
45	**वेदांत, न्याय**	**जन्म से पहले किसी आत्मा को विशेष दर्जा देना वेदांत और न्याय के कर्म सिद्धांतों के विपरीत।**

निष्कर्ष:

आयत 41-45 में प्रस्तुत विचार कई दार्शनिक और तात्त्विक सिद्धांतों से मेल नहीं खाते। इनमें न्याय, सांख्य, योग, वेदांत और वैशेषिक दर्शन के सिद्धांतों का खंडन किया गया है। खासकर, इन आयतों में दिए गए दावे तर्क, अनुभव, और प्रमाण के आधार पर जांचने पर असंतोषजनक साबित होते हैं।

आयत 46-50 का विश्लेषण और विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों के आधार पर आलोचना प्रस्तुत है। इनमें न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वेदांत दर्शन, और भगवद गीता के सिद्धांतों का उपयोग किया गया है।

आयत 46 का विश्लेषण:

> **"जब ईसा झूले में पड़ा होगा और बड़ी उम्र का होकर (दोनों हालतों में) यकसां लोगों से बातें करेगा।"**

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क: न्याय दर्शन में हर घटना के लिए प्रमाण और तर्क आवश्यक है। एक बच्चे का झूले में रहकर बात करना प्रकृति के सामान्य नियमों के खिलाफ है।**
- **आलोचना: यह घटना तर्क और प्रमाण के अभाव के कारण न्याय दर्शन के सिद्धांतों से असंगत है।**

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क: वैशेषिक दर्शन भौतिक और स्वाभाविक घटनाओं पर जोर देता है। झूले में बच्चा बात करने की घटना को प्राकृतिक नियमों के तहत समझाना असंभव है।**
- **आलोचना: यह घटना वैज्ञानिक और स्वाभाविक सिद्धांतों को चुनौती देती है।**

आयत 47 का विश्लेषण:

> ”मरियम ने कहा: मुझे लड़का कैसे होगा जबकि मुझे किसी मर्द ने छुआ तक नहीं। ख़ुदा ने कहा: जो चाहता है, करता है।”

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क: सांख्य दर्शन के अनुसार, सृष्टि प्रकृति और पुरुष के सामंजस्य से होती है। बिना पुरुष के स्त्री का गर्भधारण प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है।**
- **आलोचना: ”हो जा” कहने से सृष्टि उत्पन्न होना सांख्य के कारण-कार्य संबंध को नकारता है।**

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क: वेदांत के अनुसार, सभी घटनाएँ ब्रह्म के नियमों के अनुसार होती हैं। यहाँ ”हो जा” का कथन ब्रह्म के अचल और शाश्वत नियमों के विपरीत है।**
- **आलोचना: यह दावा ब्रह्म के सार्वभौमिक नियमों और कर्म सिद्धांत के विरुद्ध है।**

आयत 48 का विश्लेषण:

> ”ईश्वर ईसा को किताबें और तौरेत व इंजील सिखाएगा।”

योग दर्शन (Yoga):

- **तर्क: योग दर्शन में ज्ञान व्यक्तिगत साधना और अभ्यास से प्राप्त होता है। ईश्वर द्वारा ”सिखाने” का विचार व्यक्तिगत प्रयास और साधना के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**
- **आलोचना: ज्ञान का हस्तांतरण बिना प्रयास के योग के सिद्धांत के विपरीत है।**

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क: ज्ञान का प्रमाण अनुभव, तर्क और प्रमाण से होता है। ”ईश्वर सिखाएगा” बिना किसी प्रमाण के है।**
- **आलोचना: यह दावा न्याय दर्शन के तर्क आधारित ज्ञान के सिद्धांत को चुनौती देता है।**

आयत 49 का विश्लेषण:

> "ईसा मिट्टी से परिंदा बनाएंगे, अंधों को ठीक करेंगे, और मरे हुए को जीवित करेंगे।"

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क:** वैशेषिक दर्शन भौतिक नियमों और कारण-कार्य के सिद्धांत पर आधारित है। "मिट्टी से परिंदा बनाना" और "मृतकों को जीवित करना" भौतिक और वैज्ञानिक नियमों के विरुद्ध है।
- **आलोचना:** यह घटना वैशेषिक दर्शन के भौतिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को नकारती है।

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क:** सांख्य के अनुसार, जीवन प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न होता है। यहाँ "दम करके" जीवन उत्पन्न करना प्रकृति के नियमों का खंडन है।
- **आलोचना:** यह प्रकृति के स्वाभाविक कार्य के सिद्धांत का विरोध करता है।

आयत 50 का विश्लेषण:

> "ईसा हराम चीज़ों को हलाल करेंगे और नबूवत की निशानी पेश करेंगे।"

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क:** वेदांत के अनुसार, नियम सार्वभौमिक और शाश्वत होते हैं। किसी चीज़ को हराम से हलाल करना ईश्वर के नियमों में परिवर्तन को दर्शाता है।
- **आलोचना:** यह वेदांत के "ब्रह्म सत्य और अपरिवर्तनीय" सिद्धांत के खिलाफ है।

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क:** हराम और हलाल की अवधारणाएँ तर्क और प्रमाण के अभाव में सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं पर आधारित हैं।
- **आलोचना:** किसी चीज़ को "हलाल" या "हराम" घोषित करना बिना तार्किक आधार के न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है।

सारांश और तुलना (तालिका):

आयत	दर्शन	तर्क और आलोचना
46	न्याय, वैशेषिक	झूले में बच्चे का बात करना तर्क और प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध।
47	सांख्य, वेदांत	बिना पुरुष के गर्भधारण प्रकृति और कर्म सिद्धांत का उल्लंघन।
48	योग, न्याय	ज्ञान का हस्तांतरण बिना व्यक्तिगत प्रयास और तर्क के।
49	वैशेषिक, सांख्य	मिट्टी से परिंदा बनाना और मृतकों को जीवित करना वैज्ञानिक और स्वाभाविक नियमों के विपरीत।
50	वेदांत, न्याय	हराम-हलाल की अवधारणा तर्क और सार्वभौमिकता के सिद्धांत के खिलाफ।

निष्कर्ष:

आयत 46-50 में प्रस्तुत विचार दार्शनिक दृष्टिकोण से तर्कसंगत और वैज्ञानिक आधार पर असंगत हैं। इनमें न्याय, सांख्य, योग, वेदांत, और वैशेषिक दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन पाया जाता है। विशेष रूप से, इन आयतों में चमत्कारों और अस्वाभाविक घटनाओं का उल्लेख दार्शनिक सिद्धांतों और प्रकृति के नियमों के विपरीत है।

आयत 51-55 का विश्लेषण और आलोचना दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई है। इसमें न्याय दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वेदांत दर्शन, वैशेषिक दर्शन, और भगवद गीता के सिद्धांतों के आधार पर तर्क और आलोचना शामिल हैं।

आयत 51 का विश्लेषण:

> **"बस तुम ख़ुदा से डरो और मेरी इताअत करो।"**

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क: न्याय दर्शन तर्क और प्रमाण पर आधारित है। "डर" के आधार पर किसी का अनुसरण करना न्याय दर्शन के तर्कसंगत सिद्धांतों के खिलाफ है।**
- **आलोचना: ईश्वर से डराने के बजाय प्रेम और ज्ञान के आधार पर विश्वास करना अधिक न्यायसंगत होगा।**

योग दर्शन (Yoga):

- **तर्क: योग दर्शन में आत्मज्ञान और ध्यान के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति पर बल दिया गया है। "डर" का तत्व आध्यात्मिक प्रगति में बाधक है।**
- **आलोचना: ईश्वर को डर का माध्यम बनाना योग के आत्मनिर्भरता सिद्धांत के विपरीत है।**

आयत 52-54 का विश्लेषण:

> **"ईसा ने कहा, कौन ख़ुदा की तरफ़ होकर मेरा मददगार बनेगा। हवारी बोले, हम ख़ुदा के तरफ़दार हैं।"**

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क: सांख्य दर्शन में "ईश्वर" को क्रियात्मक और सृष्टिकर्ता के रूप में मान्यता नहीं दी गई। यह सिद्धांत प्रकृति और पुरुष के संतुलन पर आधारित है।**
- **आलोचना: ईश्वर को "मददगार" के रूप में प्रस्तुत करना सांख्य के आत्मनिर्भरता सिद्धांत का खंडन है।**

वेदांत दर्शन (Vedanta):

- **तर्क: वेदांत के अनुसार, सभी जीवात्माएँ ब्रह्म का हिस्सा हैं। "मददगार" की आवश्यकता ब्रह्म की सर्वशक्तिमानता के विपरीत है।**
- **आलोचना: यह विचार ब्रह्म के अद्वैत (अखंडता) सिद्धांत के खिलाफ है।**

आयत 55 का विश्लेषण:

> **"ईसा से कहा गया कि मैं तुम्हें अपनी तरफ़ उठा लूंगा और काफ़िरों से तुम्हें अलग रखूंगा।"**

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क: वैशेषिक दर्शन भौतिक और प्राकृतिक सिद्धांतों पर आधारित है। "ईसा को उठा लेना" या "काफिरों से अलग रखना" जैसी घटनाएँ प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध हैं।**
- **आलोचना: यह घटना भौतिकता और प्राकृतिक घटनाओं की वास्तविकता को नकारती है।**

भगवद गीता का दृष्टिकोण:

- **तर्क: गीता के अनुसार, हर व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगता है। "किसी को उठाना" या "काफिरों पर ग़ालिब रखना" कर्म सिद्धांत के विपरीत है।**
- **आलोचना: यह कथन कर्म सिद्धांत के साथ असंगत है क्योंकि यह व्यक्तिगत प्रयास और उत्तरदायित्व को नकारता है।**

सारांश और तुलना (तालिका):

आयत	दर्शन	तर्क और आलोचना
51	न्याय, योग	डर के आधार पर विश्वास न्याय और योग दर्शन के सिद्धांतों के विपरीत है।
52-54	सांख्य, वेदांत	"मददगार" की आवश्यकता आत्मनिर्भरता और अद्वैत सिद्धांत का खंडन है।
55	वैशेषिक, गीता	"ईसा को उठाना" और "काफिरों पर ग़ालिब रखना" प्राकृतिक और कर्म सिद्धांत के विरुद्ध है।

निष्कर्ष:

1. **आयतों में ईश्वर को "डर" और "मददगार" के रूप में प्रस्तुत करना दार्शनिक दृष्टिकोण से तर्कसंगत नहीं है।**
2. **न्याय और योग दर्शन आत्मज्ञान, तर्क, और प्रेम पर बल देते हैं, जबकि यहाँ डर और आज्ञापालन पर जोर दिया गया है।**
3. **वैशेषिक और सांख्य दर्शन के अनुसार, घटनाएँ भौतिक और स्वाभाविक नियमों का अनुसरण करती हैं, लेकिन इन आयतों में चमत्कारिक घटनाएँ इन सिद्धांतों के विपरीत हैं।**
4. **भगवद गीता का कर्म सिद्धांत इन आयतों के भाग्यवाद और चमत्कारिक दावों से मेल नहीं खाता।**

यह दृष्टिकोण दार्शनिक और तार्किक दृष्टि से इन आयतों के विचारों को अस्वीकार्य और विवादित ठहराता है।

आयत 56-60 का विश्लेषण तार्किक, दार्शनिक और मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। इसमें न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन और भगवद गीता के सिद्धांतों का उपयोग करते हुए आलोचना की गई है।

आयत 56 का विश्लेषण:

> "जिन लोगों ने कुफ्र इख़्तियार किया, उनके लिए सख़्त अज़ाब होगा और उनका कोई मददगार नहीं होगा।"

न्याय दर्शन (Nyaya):

- **तर्क:** न्याय दर्शन साक्ष्य और तर्क पर आधारित है। "कुफ्र" (अविश्वास) को अज़ाब (सज़ा) का आधार बनाना बिना तार्किक कारण के अनुचित है।
- **आलोचना:** न्याय दर्शन के अनुसार, सज़ा केवल कर्मों के आधार पर होनी चाहिए, न कि किसी के विश्वास या विचार पर।

मानवतावादी दृष्टिकोण:

- **तर्क:** यह विचारधारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता पर आधारित है। किसी के विश्वास के आधार पर उसे "सख़्त अज़ाब" देना मानवाधिकारों का उल्लंघन है।
- **आलोचना:** यह विचार मानव स्वतंत्रता और सहिष्णुता के सिद्धांतों के विपरीत है।

आयत 57 का विश्लेषण:

> "जिन्होंने ईमान लाया और अच्छे काम किए, उन्हें पूरा अज्र मिलेगा।"

योग दर्शन (Yoga):

- **तर्क:** योग दर्शन में "कर्म योग" का सिद्धांत है, जो कर्मों के फल पर बल देता है। यहाँ अच्छे कामों का परिणाम देना योग दर्शन से मेल खाता है।

- **आलोचना: हालांकि, "ईमान" को अच्छाई का आधार बनाना कर्म के सार्वभौमिक सिद्धांत को सीमित करता है। बिना विश्वास के अच्छे कार्य भी समान रूप से सराहनीय होने चाहिए।**

गीता का दृष्टिकोण:

- **तर्क: गीता में "कर्मण्येवाधिकारस्ते" का सिद्धांत है, जो कर्म के फल की अपेक्षा किए बिना कर्म करने पर बल देता है।**
- **आलोचना: "अज्र" (पुरस्कार) देने का यह विचार गीता के निष्काम कर्म योग के सिद्धांत के विपरीत है।**

आयत 58 का विश्लेषण:

> **"यह निशानियाँ और हिकमत से भरे तज़किरे हैं।"**

वैशेषिक दर्शन (Vaisheshika):

- **तर्क: वैशेषिक दर्शन में वास्तविकता और पदार्थ के गुणों का गहन अध्ययन किया गया है। "निशानियाँ" और "हिकमत" का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए बिना इसे स्वीकार करना वैशेषिक सिद्धांत के विपरीत है।**
- **आलोचना: कोई भी सत्य "हिकमत" तब तक नहीं माना जा सकता जब तक उसे प्रमाणित न किया जाए।**

आयत 59 का विश्लेषण:

> **"ईसा की हालत वैसी ही है जैसी आदम की।"**

सांख्य दर्शन (Sankhya):

- **तर्क: सांख्य दर्शन में सृष्टि का विकास प्राकृतिक तत्वों (प्रकृति और पुरुष) के आधार पर होता है। "मिट्टी से बनाकर इंसान को कहना 'हो जा'" प्राकृतिक नियमों के खिलाफ है।**
- **आलोचना: यह कथन सांख्य दर्शन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का खंडन करता है और इसे अविश्वसनीय बनाता है।**

वैशेषिक दृष्टिकोण:

- **तर्क:** प्राकृतिक नियमों के अंतर्गत, जीवन विकास के वैज्ञानिक आधार हैं। "हो जा" जैसे चमत्कार का दावा तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है।
- **आलोचना:** यह प्राकृतिक प्रक्रिया के सिद्धांत को नकारता है और इसे अविश्वसनीय बनाता है।

आयत 60 का विश्लेषण:

> **"यह हक़ बात है, इसलिए शक करने वालों में से मत हो।"**

न्याय दर्शन:

- **तर्क:** न्याय दर्शन में सच्चाई का निर्धारण तर्क और प्रमाण के आधार पर किया जाता है। "शक न करना" यह संदेश तर्क की स्वतंत्रता को बाधित करता है।
- **आलोचना:** यह कथन तर्कसंगत विचार और स्वतंत्र चिंतन की भावना को हतोत्साहित करता है।

सारांश और तुलना (तालिका):

आयत	दर्शन	तर्क और आलोचना
56	न्याय, मानवतावाद	"कुफ़्र" के आधार पर सज़ा देना न्याय और मानवता के सिद्धांतों के विपरीत है।
57	योग, गीता	"ईमान" को अच्छाई का आधार बनाना निष्काम कर्म योग के विपरीत है।
58	वैशेषिक	"निशानियाँ" का बिना प्रमाण के दावा वैशेषिक सिद्धांत के विरुद्ध है।
59	सांख्य, वैशेषिक	"मिट्टी से इंसान बनाना" प्राकृतिक और वैज्ञानिक नियमों के विपरीत है।
60	न्याय	"शक न करना" तर्क और स्वतंत्र चिंतन को बाधित करता है।

निष्कर्ष:

1. तर्क और प्रमाण की कमी: आयतों में जो दावे किए गए हैं, वे तार्किक, वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से अप्रमाणित हैं।
2. आस्था और कर्म का असंतुलन: "ईमान" को अच्छे कर्मों के साथ जोड़ने से यह विचार सार्वभौमिक नैतिकता के सिद्धांत के साथ मेल नहीं खाता।
3. चमत्कार के दावे: "हो जा" जैसी चमत्कारिक घटनाएँ न्याय, सांख्य और वैशेषिक दर्शन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के खिलाफ हैं।
4. स्वतंत्र चिंतन पर प्रतिबंध: "शक न करना" जैसे निर्देश विचार और तर्क की स्वतंत्रता को बाधित करते हैं।

यह विश्लेषण दिखाता है कि इन आयतों के विचार कई दार्शनिक और वैज्ञानिक सिद्धांतों के विपरीत हैं।

आयत का विश्लेषण और आलोचना (आयत 61-65)

आयत 61

"फिर जब तुम्हारे पास इल्म (कुरान) आ चुका उसके बाद भी अगर तुम से कोई (नसरानी) ईसा के बारे में हुज्जत करें तो कहो कि (अच्छा मैदान में) आओ..."
यह आयत ईसा मसीह की स्थिति पर बहस करने वालों को चुनौती देती है कि वे अपने परिजनों को साथ लाकर मिलकर बददुआ करें।

आलोचना:

1. तर्क का अभाव:
   - यह दृष्टिकोण किसी तर्कसंगत चर्चा को बढ़ावा देने के बजाय विवाद को भावनात्मक रूप से बढ़ाने का माध्यम है।
   - वैज्ञानिक दृष्टि से सत्य को साबित करने के लिए प्रमाण और तर्क आवश्यक हैं, न कि "लानत" जैसी प्रक्रियाएँ।
2. नैतिक दृष्टिकोण:
   - दूसरों को लानत देने का सुझाव देने से सहिष्णुता और मानवता के मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन होता है।

आयत 62

"ये सब यक़ीनी सच्चे वाक़यात हैं और ख़ुदा के सिवा कोई माबूद (क़ाबिले परसतिश) नहीं है।"
यहां ईश्वर की एकता और उसके सत्य का दावा किया गया है।

आलोचना:

1. **सत्य की परिभाषा का मुद्दा:**
   - **सत्य केवल किसी धार्मिक ग्रंथ के दावे के आधार पर स्थापित नहीं हो सकता।**
   - **इसे तर्क और प्रमाण द्वारा समर्थित करना चाहिए।**
2. **विशेषाधिकार की समस्या:**
   - **"हमारा सत्य सबसे श्रेष्ठ है" का दावा अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपमानित कर सकता है और विभाजन पैदा करता है।**

आयत 63-64

"फिर अगर इससे भी मुँह फेरें तो (कुछ) परवाह (नहीं) ख़ुदा फ़सादी लोगों को खूब जानता है..."
यहां उन लोगों को "फ़सादी" कहकर निंदा की जाती है जो इस बात को नहीं मानते।

आलोचना:

1. **विभाजनकारी मानसिकता:**
   - **जो लोग किसी विशेष धर्म को नहीं मानते, उन्हें "फ़सादी" कहना सांप्रदायिकता को प्रोत्साहित करता है।**
   - **यह मानवता को जोड़ने के बजाय उसे अलग करने का काम करता है।**
2. **आत्मकेंद्रितता:**
   - **हर विचारधारा के पीछे समान सत्य खोजने का प्रयास करना चाहिए, न कि असहमति रखने वालों को दोषी ठहराना।**

आयत 65

"ऐ एहले किताब तुम इबराहीम के बारे में (ख़्वाह मा ख़्वाह) क्यों झगड़ते हो..."
यह आयत यहूदियों और ईसाइयों को इब्राहीम के बारे में बहस करने से मना करती है।

आलोचना:

1. **इतिहासिक दृष्टि से अनदेखी:**

- यहूदियों और ईसाइयों के इब्राहीम से जुड़े अपने ऐतिहासिक और धार्मिक दावे हैं।
    - सभी धर्मों को अपने ऐतिहासिक कथाओं को प्रस्तुत करने का अधिकार होना चाहिए।
2. **सम्मान की कमी:**
    - धार्मिक बातचीत में दूसरों की आस्थाओं का सम्मान करना आवश्यक है।

तर्कशील और नैतिक दृष्टिकोण

1. **तर्क की शक्ति:**
    - किसी भी धार्मिक या ऐतिहासिक विषय पर चर्चा प्रमाण और तर्क पर आधारित होनी चाहिए।
    - धमकाने या दूसरों को लानत देने से सत्य का पता नहीं चलता।
2. **मानवता का मूल्य:**
    - सभी धर्मों और विचारधाराओं का सम्मान करना एक नैतिक आवश्यकता है।
3. **वैज्ञानिक और तर्कशील सोच:**
    - किसी भी दावे को सिद्ध करने के लिए प्रमाण और विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

तुलना तालिका

आयत	दावा	तर्कशील आलोचना	नैतिक आलोचना
61	बहस का समाधान बददुआ द्वारा करना	यह तर्कशील चर्चा का अंत है, जो विवाद को सुलझाने में विफल है।	दूसरों को बददुआ देना मानवता के ख़िलाफ है।
62	ईश्वर की एकता का दावा	बिना तर्क के यह दावा सत्य स्थापित नहीं कर सकता।	यह अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपमानित करता है।
63-64	असहमति रखने वाले "फ़सादी"	यह सांप्रदायिक मानसिकता को बढ़ावा देता है।	दूसरों को दोषी ठहराने से सहिष्णुता बाधित होती है।

65	**यहूदियों-ईसाइयों को चेतावनी**	**ऐतिहासिक दावों को खारिज करना अनुचित है।**	**अन्य धार्मिक आस्थाओं का सम्मान करना चाहिए।**

मानवता का संदेश

1. **सहिष्णुता:**
   - **असहमति को प्रेम और करुणा के साथ संभालना चाहिए।**
2. **तर्क और संवाद:**
   - **हर चर्चा को तर्क और प्रमाण पर आधारित होना चाहिए।**
3. **समानता और सम्मान:**
   - **सभी धर्मों और मान्यताओं को बराबर का सम्मान देना चाहिए।**

आयत का विश्लेषण और आलोचना (आयत 66-70)

आयत 66

"तो क्या तुम इतना भी नहीं समझते? ...जिसका तुम्हें कुछ इल्म था उसमें तो झगड़ा कर चुके, फिर तब उसमें क्या झगड़ने बैठे हो जिसकी तुम्हें कुछ ख़बर नहीं।"

आलोचना:

1. **धमकी और अपमानजनक लहजा:**
   - **यह आयत असहमति रखने वालों को "एहमक़" (मूर्ख) कहकर अपमानित करती है।**
   - **संवाद में अपमानजनक शब्दों का उपयोग विवाद को बढ़ावा देता है और तर्कशील चर्चा को बाधित करता है।**
2. **ज्ञान के अभाव का दावा:**
   - **दूसरों को "ज्ञानहीन" बताने का यह तरीका उन विचारों को नजरअंदाज करता है जो विरोधी पक्ष के पास हो सकते हैं।**
   - **हर पक्ष के दृष्टिकोण का सम्मान करना चाहिए।**

आयत 67

"इबराहीम न तो यहूदी थे और न नसरानी बल्कि निरे खरे हक़ पर थे।"

आलोचना:

1. **धार्मिक पहचान को नकारना:**
    - **यहूदियों और ईसाइयों के ऐतिहासिक और धार्मिक संबंधों को नकारकर यह आयत सांप्रदायिक विवाद को बढ़ावा देती है।**
    - **हर धर्म अपने ऐतिहासिक पात्रों पर दावे करने का अधिकार रखता है।**
2. **सच्चाई का एकतरफा दावा:**
    - **"निरे खरे हक़ पर" कहने का दावा बिना तर्क या प्रमाण के सत्य स्थापित नहीं करता।**
    - **यह अन्य धर्मों की मान्यताओं का अपमान करता है।**

आयत 68

"इबराहीम से ज़्यादा ख़ुसूसियत तो उन लोगों को थी जो ख़ास उनकी पैरवी करते थे..."

आलोचना:

1. **विशेषाधिकार का दावा:**
    - **यह आयत इस्लाम को इबराहीम का "खास" वारिस बताकर अन्य धर्मों को दरकिनार करती है।**
    - **यह विचार असमानता और धार्मिक वर्चस्व की मानसिकता को बढ़ावा देता है।**
2. **सांप्रदायिकता:**
    - **इबराहीम के नाम पर किसी एक धर्म को श्रेष्ठ ठहराने से विभिन्न समुदायों के बीच संघर्ष और कटुता पैदा होती है।**

आयत 69

"एहले किताब से एक गिरोह ने बहुत चाहा कि किसी तरह तुमको राहेरास्त से भटका दे।"

आलोचना:

1. **शक और विभाजन:**

- यह आयत दूसरे धर्मों के अनुयायियों को "भटकाने वाला" कहकर मुस्लिम समुदाय को उनके खिलाफ भड़काने का कार्य करती है।
- यह सह-अस्तित्व और आपसी समझ को बाधित करती है।

2. **संदेह और भय:**
   - "तुमको भटकाने की कोशिश" का दावा बिना प्रमाण के समुदायों के बीच अविश्वास पैदा करता है।

आयत 70

"ऐ एहले किताब तुम ख़ुदा की आयतों से क्यों इन्कार करते हो, हालांकि तुम ख़ुद गवाह बन सकते हो।"

आलोचना:

1. **असहमति का अनादर:**
   - "इन्कार" और "गवाह बन सकते हो" का उपयोग करके यह आयत दूसरे धर्मों के अनुयायियों की ईमानदारी और मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है।
   - यह संवाद के बजाय टकराव को बढ़ावा देती है।
2. **धार्मिक श्रेष्ठता:**
   - यह आयत इस्लामिक दृष्टिकोण को सर्वोपरि बताती है, जो बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक समाज में अस्वीकृत है।

तुलना तालिका

आयत	मुख्य दावा	तर्कशील आलोचना	नैतिक आलोचना
66	असहमति रखने वालों को "मूर्ख" कहता है	यह दृष्टिकोण तर्कशील संवाद को बाधित करता है।	अपमानजनक शब्दों का उपयोग अनैतिक है।
67	इबराहीम की धार्मिक पहचान का दावा	यहूदी और ईसाई मान्यताओं को नकारना इतिहासिक अन्याय है।	यह धार्मिक विवाद और विभाजन को बढ़ाता है।
68	इबराहीम का "खास"	यह विचार अन्य धर्मों की	सांप्रदायिकता को बढ़ावा

	वारिस इस्लाम है	**मान्यताओं का अनादर करता है।**	**देता है।**
69	**एहले किताब "भटकाने की कोशिश" करते हैं**	**यह बिना प्रमाण के अविश्वास और भय फैलाता है।**	**सह-अस्तित्व के मूल्यों को बाधित करता है।**
70	**"खुदा की आयतों का इन्कार"**	**असहमति रखने वालों की ईमानदारी पर सवाल उठाता है।**	**धार्मिक श्रेष्ठता का दावा विभाजनकारी है।**

तर्क और मानवता का संदेश

1. **सम्मानजनक संवाद:**
   - **हर विचारधारा और धर्म का सम्मान करना चाहिए।**
   - **अपमानजनक भाषा और आरोपों से बचना चाहिए।**
2. **तथ्य और प्रमाण:**
   - **किसी भी ऐतिहासिक या धार्मिक दावे को प्रमाण और तर्क के माध्यम से स्थापित करना चाहिए।**
   - **"भटकाने" जैसे दावों को प्रमाणित करने की आवश्यकता होती है।**
3. **समानता और सह-अस्तित्व:**
   - **किसी भी धर्म को श्रेष्ठ ठहराने के बजाय सभी समुदायों के बीच समानता और आपसी समझ को बढ़ावा देना चाहिए।**
4. **विवेक और मानवता:**
   - **तर्क और करुणा के माध्यम से संवाद को आगे बढ़ाना चाहिए।**
   - **असहमति को विवाद नहीं, बल्कि समझ बढ़ाने का अवसर मानना चाहिए।**

आयत का विश्लेषण और आलोचना (आयत 71-75)

आयत 71

"ऐ एहले किताब तुम क्यों हक़ और बातिल को गड़बड़ करते और हक़ को छुपाते हो, हालांकि तुम जानते हो।"

आलोचनाः

1. **आरोप और संदेहः**
   - **यह आयत यहूदियों और ईसाइयों पर "हक़ छुपाने" का आरोप लगाती है।**
   - **इस तरह के आरोप सामुदायिक विश्वास को कमजोर करते हैं।**
2. **सम्भावित उद्देश्यः**
   - **सत्य को छिपाने का दावा करने के बजाय तथ्यों को स्पष्ट और प्रमाणित करना चाहिए।**
   - **आपसी संवाद और तर्कशील चर्चा के बिना यह आरोप अनुचित लगता है।**

आयत 72

"और एहले किताब से एक गिरोह ने कहा कि मुसलमानों पर जो किताब नाजिल हुई है उस पर सुबह सवेरे ईमान लाओ और आखिरी वक्त इनकार कर दो..."

आलोचनाः

1. **षड्यंत्र का आरोपः**
   - **यहूदियों और ईसाइयों पर मुसलमानों को भ्रमित करने का आरोप लगाया गया है।**
   - **ऐसा बयान समुदायों के बीच संदेह और तनाव पैदा करता है।**
2. **संदेह का प्रसारः**
   - **दूसरों की मंशा पर इस तरह से प्रश्न उठाना मानवता और भाईचारे के सिद्धांत के खिलाफ है।**

आयत 73

"और तुम्हारे दीन की पैरवी करे उसके सिवा किसी और की बात का ऐतबार न करो..."

आलोचनाः

1. **धार्मिक श्रेष्ठताः**
   - **केवल अपने धर्म को सही मानने और अन्य को नकारने की मानसिकता संकीर्ण सोच को बढ़ावा देती है।**
   - **यह विचार विभिन्न समुदायों के बीच असहमति को बढ़ाता है।**

2. **एकतरफा दृष्टिकोण:**
    - **बहुलवाद को स्वीकार करने के बजाय, यह आयत धार्मिक विभाजन को गहरा करती है।**

आयत 74

"जिसको चाहे अपनी रहमत के लिए खास कर लेता है और खुदा बड़ा फ़ज़ल और करम वाला है।"

आलोचना:

1. **चयनात्मक कृपा:**
    - **यह विचार कि ईश्वर कुछ चुनिंदा लोगों पर कृपा करता है, अन्य को ईश्वर की दया से बाहर मानता है।**
    - **यह न्याय और समानता के सिद्धांत का विरोध करता है।**
2. **सामुदायिक विभाजन:**
    - **यह आयत धार्मिक वर्चस्व को बढ़ावा देती है, जो अन्य धर्मों को हीन दृष्टि से देखती है।**

आयत 75

"और एहले किताब कुछ ऐसे भी हैं कि अगर उनके पास रूपयों की ढेर अमानत रख दो तो भी उसे वैसे ही तुम्हारे हवाले कर देंगे और कुछ ऐसे भी हैं कि अगर एक अशरफी भी अमानत रखो तो जब तक उनके सर पर खड़े न रहोगे, तुम्हें वापस न देंगे।"

आलोचना:

1. **सामुदायिक भेदभाव:**
    - **यह आयत समुदाय विशेष (यहूदियों) पर अमानतदारी और बेईमानी के आधार पर आरोप लगाती है।**
    - **यह अन्य समुदायों के प्रति पूर्वाग्रह और नफरत को जन्म देती है।**
2. **सामाजिक न्याय का उल्लंघन:**
    - **सभी समुदायों में अच्छे और बुरे लोग हो सकते हैं। किसी समुदाय विशेष पर सामूहिक रूप से आरोप लगाना अन्याय है।**

तुलना तालिका

आयत	मुख्य दावा	तर्कशील आलोचना	नैतिक आलोचना
71	एहले किताब "हक़ छुपाते हैं"	बिना प्रमाण के आरोप तर्कशीलता के खिलाफ है।	संदेह फैलाना मानवता के खिलाफ है।
72	मुसलमानों को भ्रमित करने का षड्यंत्र	यह दावा संदेह और द्वेष को बढ़ावा देता है।	यह आपसी विश्वास और भाईचारे को नुकसान पहुंचाता है।
73	अपने धर्म को श्रेष्ठ बताने की शिक्षा	बहुलतावाद के खिलाफ है और विभाजनकारी है।	धार्मिक श्रेष्ठता का दावा असमानता को बढ़ाता है।
74	ईश्वर की कृपा केवल कुछ को मिलती है	यह विचार न्याय और समानता के विपरीत है।	सामुदायिक भेदभाव को बढ़ावा देता है।
75	कुछ यहूदी अमानतदारी में बुरे होते हैं	सामूहिक दोषारोपण पूर्वाग्रह को जन्म देता है।	यह सामुदायिक एकता के मूल्यों को तोड़ता है।

मानवता और नैतिकता का संदेश

1. **समानता और न्याय:**
   - ईश्वर की कृपा और दया सभी के लिए समान होनी चाहिए।
   - किसी धर्म या समुदाय को श्रेष्ठ या हीन कहना अनुचित है।
2. **संवाद और सह-अस्तित्व:**
   - सभी समुदायों के बीच विश्वास और आपसी सम्मान बढ़ाना चाहिए।
   - बिना प्रमाण के लगाए गए आरोप विभाजन को बढ़ावा देते हैं।
3. **सच्चाई और तर्कशीलता:**
   - आरोपों को प्रमाण और तर्क के साथ पेश करना चाहिए।
   - प्रत्येक विचारधारा की सच्चाई को सम्मानपूर्वक जांचा जाना चाहिए।
4. **सामुदायिक एकता:**

- ○ **सभी धर्मों और समुदायों में अच्छाई और बुराई दोनों होती हैं।**
- ○ **किसी समुदाय विशेष पर आरोप लगाना सामाजिक समरसता के ख़िलाफ है।**

Here’s the revised version in Hindi with the proper Ayat numbers:

---

1. आयत 76:

"हाँ (अलबत्ता) जो शख़्स अपने अहद को पूरा करे और परहेज़गारी इख़्तेयार करे तो बेशक ख़ुदा परहेज़गारों को दोस्त रखता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:76)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय दर्शन में किसी कार्य और उसके परिणामों का मूल्यांकन तर्क, प्रमाण और साक्ष्य के आधार पर किया जाता है।**
- **आलोचना: इस आयत में वादा पूरा करने और परहेज़गारी को पुरस्कृत करने की बात की जा रही है, लेकिन इसका कोई तार्किक प्रमाण या स्पष्ट साक्ष्य नहीं दिया गया है। न्याय दर्शन में, कर्मों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क के आधार पर होता है, न कि केवल वचन या परहेज़गारी के आधार पर।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत तर्क या प्रमाण के बिना दी जाती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन करती है।**

---

2. आयत 77:

"बेशक जो लोग अपने अहद और (क़समे) जो ख़ुदा (से किया था उसके) बदले थोड़ा (दुनयावी) मुआवेज़ा ले लेते हैं उन ही लोगों के वास्ते आख़िरत में कुछ हिस्सा नहीं और क़यामत के दिन ख़ुदा उनसे बात तक तो करेगा नहीं ओर न उनकी तरफ़ नज़र (रहमत) ही करेगा और न उनको (गुनाहों की गन्दगी से) पाक करेगा और उनके लिये दर्दनाम अज़ाब है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:77)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी कार्य और उसके परिणामों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क के आधार पर किया जाना चाहिए।**

- आलोचना: इस आयत में कड़ी सजा का उल्लेख किया गया है, लेकिन इसका कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया है। न्याय दर्शन में सजा को प्रमाण और तर्क के आधार पर निर्धारित किया जाता है, न कि केवल आदेश या घोषणा के आधार पर।
- सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में दी जा रही सजा का तर्क और प्रमाण प्रदान नहीं किया गया, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।

---

3. आयत 78:

"और एहले किताब से बाज़ ऐसे ज़रूर हैं कि किताब (तौरेत) में अपनी ज़बाने मरोड़ मरोड़ के (कुछ का कुछ) पढ़ जाते हैं ताकि तुम ये समझो कि ये किताब का जुज़ है हालांकि वह किताब का जुज़ नहीं और कहते हैं कि ये (जो हम पढ़ते हैं) ख़ुदा के यहाँ से (उतरा) है हालांकि वह ख़ुदा के यहाँ से नहीं (उतरा) और जानबूझ कर ख़ुदा पर झूठ (बोहतान) जोड़ते हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:78)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी आरोप या दावे को प्रमाण और साक्ष्य के साथ सिद्ध किया जाना चाहिए।
- आलोचना: इस आयत में दूसरों पर तौरेत को मरोड़ने का आरोप लगाया गया है, लेकिन इस दावे का समर्थन करने के लिए कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया गया है। न्याय दर्शन में आरोपों को साक्ष्य और तर्क के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना किसी प्रमाण के एक आरोप प्रस्तुत करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।

---

4. आयत 79:

"किसी आदमी को ये ज़ेबा न था कि ख़ुदा तो उसे (अपनी) किताब और हिकमत और नबूवत अता फ़रमाए और वह लोगों से कहता फिरे कि ख़ुदा को छोड़कर मेरे बन्दे बन जाओ बल्कि (वह तो यही कहेगा कि) तुम अल्लाह वाले बन जाओ क्योंकि तुम तो (हमेशा) किताबे ख़ुदा (दूसरो) को पढ़ाते रहते हो और तुम ख़ुद भी सदा पढ़ते रहे हो।"
(सूरह आल-इम्रान 3:79)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी वादे या शिक्षाओं को प्रमाण और साक्ष्य के आधार पर स्वीकार किया जाना चाहिए।
- आलोचना: यह आयत किसी व्यक्ति को खुदा के अलावा खुद को पुजवाने का आदेश देती है, जो नैतिक और तर्कसंगत रूप से गलत है। न्याय दर्शन में यह सिद्धांत है कि किसी को किसी अन्य को अपना प्रभु या गुरु बनाने का हक़ नहीं है, जब तक इसका तर्क और प्रमाण न हो।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत अपने आप को प्रभु मानने के लिए किसी व्यक्ति को प्रेरित करती है, जो तर्क और प्रमाण से मेल नहीं खाती है।

---

5. आयत 80:

"और वह तुमसे ये तो (कभी) न कहेगा कि फ़रिश्तों और पैग़म्बरों को ख़ुदा बना लो भला (कहीं ऐसा हो सकता है कि) तुम्हारे मुसलमान हो जाने के बाद तुम्हें कुफ्र का हुक्म करेगा।"
(सूरह आल-इम्रान 3:80)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी धार्मिक या सामाजिक आदेश का पालन करने से पहले उसके तर्क और साक्ष्य का होना आवश्यक है।
- आलोचना: यह आयत यह संकेत देती है कि किसी को फरिश्तों या पैग़म्बरों को खुदा बना लेना उचित है, जो कि न्याय दर्शन के अनुसार गलत है। फरिश्तों और पैग़म्बरों को ईश्वर का दर्जा देना तर्कसंगत नहीं है और यह तर्क के खिलाफ है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में फरिश्तों और पैग़म्बरों को ईश्वर बनाने का कथन किया गया है, जो न्याय दर्शन के तर्क और तात्त्विक सिद्धांतों से मेल नहीं खाता है।

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता

3:76	**प्रमाण की कमी**	**तर्कहीन**	**तर्क आधारित नहीं**	**पवित्रता का अभाव**	**अनियंत्रित कर्तव्य**	**योग के सिद्धांत से मेल नहीं**	**साक्ष्य और प्रमाण का अभाव**
3:77	**सजा के लिए तर्क नहीं**	**सबूत के बिना दंड**	**कड़ी सजा का अभाव**	**न्याय का अभाव**	**बिना कारण का दंड**	**अन्यायपूर्ण**	**निष्कलंक न्याय का उल्लंघन**
3:78	**बिना प्रमाण के आरोप**	**न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन**	**तर्कहीन आरोप**	**अनुशासन का अभाव**	**बिना तर्क के आरोप**	**अधार्मिक**	**आधारहीन आरोप**
3:79	**तर्क की कमी**	**व्यक्तिगत अधिकार का उल्लंघन**	**पवित्रता की कमी**	**सिद्धांत का उल्लंघन**	**अध्यात्मिक अनुशासन का उल्लंघन**	**तर्क से परे**	**नैतिक रूप से गलत**
3:80	**तर्कहीन विश्वास**	**उल्लंघन**	**आधारहीन विश्वास**	**दार्शनिक अपवित्रता**	**नैतिकता का उल्लंघन**	**बिना प्रमाण के आदेश**	**नैतिक और तार्किक रूप से गलत**

यह तालिका विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों से यह साबित करती है कि दी गई आयतें तार्किक और प्रमाणिक रूप से गलत हैं और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 81: "और ऐ रसूल वह वक़्त भी याद दिलाओ जब ख़ुदा ने पैग़म्बरों से इक़रार लिया कि हम तुमको जो कुछ किताब और हिकमत (वग़ैरह) दे उसके बाद तुम्हारे पास कोई रसूल आए और जो किताब तुम्हारे पास उसकी तसदीक़ करे तो (देखो) तुम ज़रूर उस पर ईमान लाना, और ज़रूर उसकी मदद करना (और) ख़ुदा ने फ़रमाया क्या तुमने इक़रार कर लिया तुमने मेरे (अहद का) बोझ उठा लिया सबने अर्ज़ की हमने

इक़रार किया इरशाद हुआ (अच्छा) तो आज के क़ौल व (क़रार के) आपस में एक दूसरे के गवाह रहना।"
(सूरह आल-इम्रान 3:81)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय दर्शन में किसी भी आदेश या वचन को प्रमाण और साक्ष्य के आधार पर सत्य माना जाता है। यहाँ, पैग़म्बरों से किए गए वादे का कोई स्पष्ट तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया।**
- **आलोचना: इस आयत में पैग़म्बरों से किए गए वादे का उल्लेख किया गया है, लेकिन इसका कोई प्रमाण या साक्ष्य नहीं है। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, बिना तर्क और प्रमाण के वचन देना गलत माना जाएगा।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत तर्क या प्रमाण के बिना केवल वचन पर आधारित है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।**

---

2. आयत 82: "और तुम्हारे साथ मैं भी एक गवाह हूँ फिर उसके बाद जो शख़्स (अपने क़ौल से) मुँह फेरे तो वही लोग बदचलन हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:82)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: तर्क और प्रमाण के बिना किसी पर आरोप नहीं लगाया जा सकता। आरोप लगाने से पहले साक्ष्य का होना आवश्यक है।**
- **आलोचना: यह आयत बिना किसी स्पष्ट प्रमाण या तर्क के लोगों पर आरोप लगा रही है। न्याय दर्शन में आरोपों का प्रमाण होना अनिवार्य है, और बिना प्रमाण के आरोप सही नहीं माने जा सकते।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना साक्ष्य के आरोप लगाती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

3. आयत 83: "तो क्या ये लोग ख़ुदा के दीन के सिवा (कोई और दीन) ढूढते हैं हालांकि जो (फ़रिश्ते) आसमानों में हैं और जो (लोग) ज़मीन में हैं सबने ख़ुशी ख़ुशी या ज़बरदस्ती उसके सामने अपनी गर्दन डाल दी है और (आख़िर सब) उसकी तरफ़ लौट कर जाएंगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:83)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: हर व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा और निर्णय का सम्मान किया जाना चाहिए। किसी पर जोर नहीं डाला जा सकता।
- आलोचना: इस आयत में लोगों को ज़बरदस्ती एक विशेष धर्म अपनाने की बात की जा रही है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है। न्याय दर्शन के अनुसार, हर व्यक्ति को अपनी इच्छा और तर्क के आधार पर निर्णय लेने का अधिकार है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में ज़बरदस्ती धर्म अपनाने का आदेश दिया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है।

---

4. आयत 84: "ऐ रसूल उन लोगों से कह दो कि हम तो ख़ुदा पर ईमान लाए और जो किताब हम पर नाज़िल हुयी और जो (सहीफ़े) इबराहीम और इस्माईल और इसहाक़ और याक़ूब और औलादे याक़ूब पर नाज़िल हुये और मूसा और ईसा और दूसरे पैग़म्बरों को जो (जो किताब) उनके परवरदिगार की तरफ़ से इनायत हुयी (सब पर ईमान लाए) हम तो उनमें से किसी एक में भी फ़र्क़ नहीं करते।"
(सूरह आल-इम्रान 3:84)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी धार्मिक पुस्तक या धर्म के प्रति आस्थाएँ तर्क और प्रमाण के आधार पर होनी चाहिए।
- आलोचना: यह आयत सभी धर्मों को समान मानते हुए किसी एक धर्म को अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानने की बात करती है। लेकिन न्याय दर्शन के सिद्धांत में तर्क और प्रमाण के आधार पर किसी धर्म को सही या गलत ठहराया जा सकता है। बिना तर्क के धर्मों की समानता को स्वीकार करना न्याय दर्शन के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना तर्क और प्रमाण के धर्मों की समानता का दावा करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।

---

5. आयत 85: "और हम तो उसी (यकता ख़ुदा) के फ़रमाबरदार हैं और जो शख़्स इस्लाम के सिवा किसी और दीन की ख़्वाहिश करे तो उसका वह दीन हरगिज़ कुबूल ही न किया जाएगा और वह आख़िरत में सख़्त घाटे में रहेगा।"
(सूरह आल-इम्रान 3:85)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: धर्म का पालन व्यक्तिगत अधिकार है, और हर व्यक्ति को अपनी आस्थाएँ चुनने का अधिकार होना चाहिए।**
- **आलोचना: इस आयत में किसी अन्य धर्म को स्वीकार नहीं करने का आदेश दिया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आस्था और धर्म का चयन करने का अधिकार है, और इसे ज़बरदस्ती बदलने का कोई तर्क नहीं है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन करती है और न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती।**

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:81	**तर्क और प्रमाण की कमी**	**कोई तर्क नहीं**	**प्रमाण का अभाव**	**स्वतंत्रता का उल्लंघन**	**किसी एक धर्म पर बल देना**	**धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन**	**तर्क से परे**
3:82	**बिना प्रमाण के आरोप**	**तर्क की कमी**	**बिना साक्ष्य के आरोप**	**अनुशासन का अभाव**	**आरोप बिना प्रमाण के**	**अधार्मिक**	**आधारहीन आरोप**
3:83	**ज़बरदस्ती धर्म अपनाने का आदेश**	**व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन**	**तर्कहीन आदेश**	**व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन**	**जबरदस्ती धर्म का पालन**	**तर्क से परे**	**व्यक्तिगत अधिकार का उल्लंघन**
3:84	**बिना तर्क के समानता का दावा**	**किसी धर्म को सही साबित**	**तर्कहीन समानता**	**अनुशासन की कमी**	**धर्म की समानता का विरोध**	**तर्क और प्रमाण का अभाव**	**बिना साक्ष्य के समानता**

		करने में विफल					
3:85	व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन	किसी धर्म को स्वीकार न करने का आदेश	तर्कहीन आदेश	अनुशासन का उल्लंघन	धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन	तर्क और प्रमाण का अभाव	व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन

यह तालिका विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों से यह साबित करती है कि दी गई आयतें तार्किक और प्रमाणिक रूप से गलत हैं और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 86: "भला ख़ुदा ऐसे लोगों की क्योंकर हिदायत करेगा जो इमाने लाने के बाद फिर काफ़िर हो गए हालांकि वह इक़रार कर चुके थे कि पैग़म्बर (आख़िरूज़ज़मा) बरहक़ हैं और उनके पास वाज़ेह व रौशन मौजिज़े भी आ चुके थे और ख़ुदा ऐसी हठधर्मी करने वाले लोगों की हिदायत नहीं करता।"
(सूरह आल-इम्रान 3:86)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय दर्शन में सत्य की पहचान प्रमाण और तर्क पर आधारित होती है। किसी भी व्यक्ति की निंदा और हुक्म बिना तर्क या प्रमाण के नहीं दी जा सकती।**
- **आलोचना: इस आयत में एक व्यक्ति के पहले ईमान लाने और फिर काफ़िर होने पर उसकी हिदायत न देने की बात की गई है, लेकिन इस स्थिति में कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया गया है कि व्यक्ति ने किस कारण से अपना विश्वास बदल दिया। न्याय दर्शन में यह आवश्यक है कि जब किसी को दोषी ठहराया जाए, तो उसके अपराध का प्रमाण प्रस्तुत किया जाए।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना प्रमाण और तर्क के किसी के विश्वास को बदलने के कारणों का स्पष्टता से विवरण नहीं देती, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

2. आयत 87: "ऐसे लोगों की सज़ा यह है कि उनपर ख़ुदा और फ़रिश्तों और (दुनिया जहान के) सब लोगों की फिटकार हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:87)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी की सज़ा बिना साक्ष्य या तर्क के नहीं दी जा सकती।**
- **आलोचना: यह आयत किसी व्यक्ति की सज़ा का निर्धारण करती है, लेकिन इसमें यह नहीं बताया गया कि उस व्यक्ति ने कौन सा अपराध किया है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी पर आरोप लगाने से पहले उसे अपराधी साबित करना आवश्यक है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: आयत बिना किसी प्रमाण या तर्क के किसी पर आरोप लगाती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

3. आयत 88: "और वह हमेशा उसी फिटकार में रहेंगे न तो उनके अज़ाब ही में तख़फ़ीफ़ (कमी) की जाएगी और न उनको मोहलत दी जाएगी।"
(सूरह आल-इम्रान 3:88)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय का तात्पर्य है कि हर अपराध की सज़ा उचित और प्रमाणिक होनी चाहिए। साथ ही, सज़ा में कोई हल्कापन या मोहलत दी जा सकती है।**
- **आलोचना: इस आयत में किसी व्यक्ति को पूरी तरह से सजा देने की बात की जा रही है, बिना यह बताए कि उस व्यक्ति ने कौन सा अपराध किया था। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी को पूरी तरह से सजा देना तब तक सही नहीं होता जब तक उसके अपराध का सही प्रमाण प्रस्तुत न किया जाए।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना प्रमाण और तर्क के किसी को पूरी तरह सजा देने की बात करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

4. आयत 89: "मगर (हां) जिन लोगों ने इसके बाद तौबा कर ली और अपनी (ख़राबी की) इस्लाह कर ली तो अलबत्ता ख़ुदा बड़ा बख़्शने वाला मेहरबान है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:89)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी व्यक्ति को दंड देने से पहले उसकी गलती या अपराध का सही विश्लेषण और तर्क होना चाहिए। इसके बाद ही तौबा और सुधार की प्रक्रिया की स्वीकृति दी जा सकती है।
- आलोचना: यह आयत यह कहती है कि अगर कोई व्यक्ति अपनी गलती पर तौबा कर ले और सुधार कर ले, तो वह बख्शा जाएगा। हालांकि यह एक सकारात्मक दृष्टिकोण है, लेकिन न्याय दर्शन के अनुसार इस प्रक्रिया के बारे में कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया है कि तौबा और सुधार कैसे मापे जाएंगे।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत तौबा और सुधार के बिना किसी स्पष्ट तर्क के स्वीकार्यता देती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।

---

5. आयत 90: "जो अपने ईमान के बाद काफ़िर हो बैठे फिर (रोज़ बरोज़ अपना) कुफ्र बढ़ाते चले गये तो उनकी तौबा हरगिज़ न कुबूल की जाएगी और यही लोग (पल्ले दरजे के) गुमराह हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:90)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी व्यक्ति का फैसला या सजा प्रमाण और तर्क पर आधारित होनी चाहिए। बिना प्रमाण के किसी पर निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।
- आलोचना: यह आयत यह कहती है कि जो लोग ईमान के बाद काफ़िर हो गए और कुफ्र बढ़ाते गए, उनकी तौबा स्वीकार नहीं की जाएगी। हालांकि यह आयत किसी व्यक्ति की स्थिति के बारे में बयान कर रही है, लेकिन न्याय दर्शन के अनुसार, इस स्थिति का कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया गया है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना तर्क और प्रमाण के किसी व्यक्ति की तौबा को अस्वीकार करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:86	बिना तर्क	व्यक्ति के	तर्कहीन	तर्क की	सच्चाई	नफरत नहीं,	बिना प्रमाण

	के हिदायत का निष्कर्ष	विचार का सम्मान नहीं	निष्कर्ष	कमी	का प्रमाण नहीं	समर्पण	के दोषारोपण
3:87	आरोप बिना प्रमाण के	आरोप के बिना सजा नहीं	बिना साक्ष्य के आरोप	व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन	दोषी ठहराने का गलत तरीका	कड़ी सजा से बचें	बिना प्रमाण के निंदा
3:88	पूरी सजा बिना प्रमाण के	अनुशासन की कमी	कोई तर्क नहीं	न्याय का उल्लंघन	बिना प्रमाण के सजा देना	सजा का मनमाना तरीका	तर्क की कमी
3:89	सुधार का कोई प्रमाण नहीं	तौबा का माप नहीं	प्रमाण का अभाव	तर्क नहीं दिया गया	सुधार का तरीका अस्पष्ट	तौबा का प्रमाण नहीं	सुधार की शर्तें स्पष्ट नहीं
3:90	बिना तर्क के तौबा का अस्वीकार	सुधार का कोई प्रमाण नहीं	तर्कहीन निष्कर्ष	अनुशासन की कमी	बिना प्रमाण के निंदा	व्यक्तिगत सुधार की आवश्यकता	बिना प्रमाण के निष्कर्ष

यह तालिका विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों से यह साबित करती है कि दी गई आयतें तार्किक और प्रमाणिक रूप से गलत हैं और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 91: "बेशक जिन लोगों ने कुफ्र इख़्तियार किया और कुफ्र की हालत में मर गए तो अगरचे इतना सोना भी किसी की गुलू ख़लासी {छुटकारा पाने} में दिया जाए कि ज़मीन भर जाए तो भी हरगिज़ न कुबूल किया जाएगा, यही लोग हैं जिनके लिए दर्दनाक अज़ाब होगा और उनका कोई मददगार भी न होगा।" (सूरह आल-इम्रान 3:91)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी व्यक्ति को अपराधी ठहराने से पहले यह आवश्यक है कि उसके अपराध को प्रमाणित किया जाए। किसी भी विश्वास या कृत्य को सजा देने के लिए तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है।**
- **आलोचना: इस आयत में यह कहा गया है कि अगर कोई कुफ़्र में मरे तो उसे कोई दान या प्रायश्चित स्वीकार नहीं किया जाएगा, चाहे वह कितना भी मूल्यवान हो। यह तर्कहीन है क्योंकि यह विचार नहीं किया गया है कि एक व्यक्ति क्यों कुफ़्र को चुनता है या वह अपना मार्ग बदलने की कितनी कोशिश करता है। न्याय दर्शन के अनुसार, बिना प्रमाण और तर्क के किसी के अंतर्गत सजा नहीं दी जा सकती।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना किसी प्रमाण और तर्क के व्यक्ति को सजा देती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

2. आयत 92: "(लोगों) जब तक तुम अपनी पसंदीदा चीजों में से कुछ राहे ख़ुदा में ख़र्च न करोगे, हरगिज़ नेकी के दरजे पर फ़ायज़ नहीं हो सकते और तुम कोई भी चीज़ भी ख़र्च करो ख़ुदा तो उसको ज़रूर जानता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:92)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी के कर्मों का मूल्यांकन किया जाता है, न कि केवल दिखावे के आधार पर। कर्मों के निष्कलंक प्रमाण और तर्क को ध्यान में रखा जाता है।**
- **आलोचना: इस आयत में यह कहा गया है कि किसी को ख़ुदा की राह में दान देने से ही नेक़ी का दर्जा मिलेगा, लेकिन यह तर्कहीन है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने कर्मों में वास्तविक सत्य और न्याय का पालन किया है, तो केवल दान देना ही उसे नेक नहीं बना सकता। न्याय दर्शन के अनुसार, व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी मानसिकता और आस्थाओं पर आधारित होना चाहिए, न कि केवल उसके दान पर।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत केवल दान पर जोर देती है, जबकि न्याय दर्शन में व्यक्ति के आंतरिक सत्य और तर्क को भी महत्वपूर्ण माना जाता है।**

---

3. आयत 93: "तौरेत के नाजिल होने के क़ब्ल याक़ूब ने जो जो चीज़ें अपने ऊपर हराम कर ली थीं उनके सिवा बनी इसराइल के लिए सब खाने हलाल थे, (ऐ रसूल उन यहूद से) कह दो कि अगर तुम (अपने दावे में सच्चे हो तो तौरेत ले आओ और उसे हमारे सामने पढ़ो।"
(सूरह आल-इम्रान 3:93)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: कोई भी दावा या दावा का समर्थन प्रमाण और तर्क से किया जाता है।**
- **आलोचना: इस आयत में यहूदियों से कहा गया है कि वह तौरेत लाकर पढ़ें, लेकिन यह सुझाव बिना किसी वास्तविक प्रमाण या तर्क के नहीं है। न्याय दर्शन के अनुसार, यदि कोई दावा किया जाता है, तो उसे प्रमाण और तर्क द्वारा सही ठहराना आवश्यक होता है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में यहूदियों से केवल तौरेत लाने की बात की गई है, बिना यह बताए कि क्यों और किस आधार पर यह दावा सही है। यह न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

4. आयत 94: "और उसको (हमारे सामने) पढ़ो फिर उसके बाद भी जो कोई ख़ुदा पर झूठ तूफ़ान जोड़े तो (समझ लो) कि यही लोग ज़ालिम (हठधर्मी) हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:94)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी पर आरोप लगाने से पहले, आरोपों का प्रमाण और तर्क आवश्यक है।**
- **आलोचना: इस आयत में यह कहा गया है कि जो कोई ख़ुदा पर झूठ आरोप लगाएगा वह ज़ालिम है, लेकिन यह आरोप बिना प्रमाण और तर्क के लगाना है। न्याय दर्शन के अनुसार, आरोपों का समर्थन प्रमाण और तर्क से किया जाना चाहिए, न कि केवल बिना किसी स्पष्टता के।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना प्रमाण और तर्क के किसी पर आरोप लगाती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

5. आयत 95: "(ऐ रसूल) कह दो कि ख़ुदा ने सच फ़रमाया तो अब तुम मिल्लते इबराहीम (इस्लाम) की पैरवी करो जो बातिल से कतरा के चलते थे और मुशरेकीन से न थे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:95)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी के विश्वास और मार्ग का चयन करने से पहले उसके सही प्रमाण और तर्कों का होना आवश्यक है।**

- **आलोचना: इस आयत में यह कहा गया है कि मिल्लते इब्राहीम की पैरवी करो, लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि मिल्लते इब्राहीम की क्या विशेषताएँ थीं और क्यों उन्हें पालन करना चाहिए। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी विश्वास का समर्थन प्रमाण और तर्क से किया जाना चाहिए।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना तर्क और प्रमाण के किसी विशेष मार्ग का पालन करने की सलाह देती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:91	बिना तर्क के सजा	बिना प्रमाण के दोषी ठहराना	प्रमाण की कमी	बिना तर्क के निष्कर्ष	बिना प्रमाण के निष्कर्ष	दोषारोपण का आधार नहीं	बिना प्रमाण के सजा देना
3:92	केवल दान पर जोर	आंतरिक सत्य की अनदेखी	तर्क की कमी	केवल दिखावे का पालन	केवल दान का मूल्यांकन	व्यक्ति के कर्मों का मूल्यांकन नहीं	व्यक्ति की स्वतंत्रता की अनदेखी
3:93	बिना प्रमाण के दावा	बिना तर्क के निर्देश	आरोप की अस्पष्टता	प्रमाण की कमी	बिना प्रमाण के दावा	तर्क की अनदेखी	बिना तर्क के दिशा देना
3:94	बिना तर्क के आरोप	दोषारोपण का प्रमाण नहीं	बिना तर्क के आरोप	प्रमाण की कमी	बिना प्रमाण के आरोप	किसी पर दोषारोपण का आधार नहीं	आरोप का आधार अस्पष्ट

3:95	**बिना प्रमाण के मार्गदर्शन**	**बिना तर्क के मार्गदर्शन**	**मार्गदर्शन का अभाव**	**प्रमाण की कमी**	**बिना तर्क के मार्गदर्शन**	**तर्क का अभाव**	**मार्गदर्शन का आधार अस्पष्ट**

यह तालिका विभिन्न दार्शनिक सिद्धांतों से यह साबित करती है कि दी गई आयतें तार्किक और प्रमाणिक रूप से गलत हैं और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 96: "लोगों (की इबादत) के वास्ते जो घर सबसे पहले बनाया गया वह तो यक़ीनन यही (काबा) है जो मक्के में है, बड़ी (ख़ैर व बरकत) वाला और सारे जहान के लोगों का रहनुमा।"
(सूरह आल-इम्रान 3:96)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी स्थल या तत्व को सर्वोत्तम मानने से पहले उसे सबल प्रमाण और तर्क से साक्ष्यित करना आवश्यक है।**
- **आलोचना: इस आयत में काबा को सर्वश्रेष्ठ घर बताया गया है, लेकिन यह बयान बिना तर्क और प्रमाण के किया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी स्थान या स्थान की श्रेष्ठता की पुष्टि प्रमाण और तर्क से करनी चाहिए, न कि केवल विश्वासों और कथाओं पर।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना कोई तर्क या प्रमाण के काबा को सर्वोत्तम ठहराती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

2. आयत 97: "इसमें (हुरमत की) बहुत सी वाज़े और रौशन निशानियाँ हैं (उनमें से) मुक़ाम इबराहीम है (जहाँ आपके क़दमों का पत्थर पर निशान है) और जो इस घर में दाखिल हुआ अमन में आ गया और लोगों पर वाजिब है कि महज़ ख़ुदा के लिए ख़ानाए काबा का हज करें जिन्हे वहां तक पहुँचने की इस्तेताअत है और जिसने बावजूद कुदरत हज से इन्कार किया तो (याद रखे) कि ख़ुदा सारे जहान से बेपरवाह है।"
(सूरह آل-इम्रान 3:97)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्यों का निर्धारण तर्क और प्रमाण से किया जाता है, न कि केवल धार्मिक आदेशों से।
- आलोचना: हज का अनिवार्य होना और काबा के लिए श्रद्धा केवल एक आदेश है, जबकि न्याय दर्शन में किसी व्यक्ति पर कर्तव्य थोपने से पहले तर्क और प्रमाण पर विचार करना जरूरी है। हज करने के लिए किसी की क्षमताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए, और यह उसकी व्यक्तिगत स्थिति और निर्णय पर निर्भर होना चाहिए।
- सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में बिना किसी तर्क या प्रमाण के हज को एक अनिवार्य कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।

---

3. आयत 98: "(ऐ रसूल) तुम कह दो कि ऐ अहले किताब खुदा की आयतों से क्यो मुन्किर हुए जाते हो, हालांकि जो काम काज तुम करते हो ख़ुदा को उसकी (पूरी) पूरी इत्तेला है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:98)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: कोई व्यक्ति तब तक दोषी नहीं ठहराया जा सकता जब तक उसके कामों का निष्कलंक प्रमाण न हो।
- आलोचना: इस आयत में अहले किताब को दोषी ठहराया गया है कि वे ख़ुदा की आयतों से मुन्किर हैं, लेकिन यह बिना किसी प्रमाण के किया गया है। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, बिना किसी दोष के किसी को भी दोषी ठहराना तर्कहीन है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना प्रमाण के किसी को दोषी ठहराती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

---

4. आयत 99: "(ऐ रसूल) तुम कह दो कि ऐ अहले किताब दीदए दानिस्ता (जानबूझ कर) खुदा की (सीधी) राह में (नाहक़ की) कज़ी ढूँढो (ढूढ) के ईमान लाने वालों को उससे क्यों रोकते हो और जो कुछ तुम करते हो ख़ुदा उससे बेख़बर नहीं है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:99)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी का मार्गदर्शन केवल प्रमाण और तर्क के आधार पर किया जाता है, न कि केवल विश्वासों के आधार पर।

- **आलोचना: इस आयत में यह कहा गया है कि अहले किताब जानबूझकर ईमान लाने वालों को रोकते हैं, लेकिन इसके समर्थन में कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी के कृत्य को समझने के लिए उसके इरादों और तर्कों को जानना ज़रूरी होता है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में बिना प्रमाण के किसी के कर्मों को गलत ठहराया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

---

5. आयत 100: "ऐ ईमान वालों अगर तुमने एहले किताब के किसी फ़िरक़े का भी कहना माना तो (याद रखो कि) वह तुमको ईमान लाने के बाद (भी) फिर दुबारा काफ़िर बना छोड़ेंगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:100)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: एक व्यक्ति की आस्था या विश्वास को तार्किक और प्रमाणिक तरीके से परखा जाता है।**
- **आलोचना: इस आयत में यह कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति अहले किताब के कथन पर विश्वास करता है, तो वह अपने ईमान से फिर काफ़िर हो जाएगा। यह विचार बिना किसी प्रमाण और तर्क के व्यक्त किया गया है, और न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, किसी की आस्था का मूल्यांकन उसकी आंतरिक सोच और तर्क से किया जाना चाहिए, न कि केवल धार्मिक शिक्षाओं से।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना प्रमाण और तर्क के किसी की आस्था को गलत ठहराती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।**

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:96	बिना प्रमाण के श्रेष्ठता	बिना तर्क के श्रेष्ठता	प्रमाण की कमी	बिना प्रमाण के निष्कर्ष	बिना प्रमाण के निष्कर्ष	श्रेष्ठता का निर्धारण नहीं	प्रमाण और तर्क का अभाव

3:97	**बिना तर्क के अनिवार्यता**	**बिना तर्क के निर्देश**	**अधिकार की अनदेखी**	**किसी के कर्तव्य का मूल्यांकन नहीं**	**बिना तर्क के अनिवार्यता**	**कर्तव्यों पर थोपना**
3:98	**बिना प्रमाण के दोषारोपण**	**दोषारोपण का प्रमाण नहीं**	**बिना तर्क के आरोप**	**प्रमाण की कमी**	**बिना प्रमाण के दोषारोपण**	**किसी पर आरोप लगाने का आधार नहीं**
3:99	**बिना तर्क के मार्गदर्शन**	**मार्गदर्शन का अभाव**	**बिना तर्क के मार्गदर्शन**	**प्रमाण की कमी**	**बिना प्रमाण के मार्गदर्शन**	**मार्गदर्शन का आधार अस्पष्ट**
3:100	**बिना प्रमाण के आस्था पर आरोप**	**आस्था का मूल्यांकन नहीं**	**बिना तर्क के आरोप**	**आस्था और विश्वास का अनदेखा**	**बिना प्रमाण के आस्था पर आरोप**	**आस्था का अनदेखा**

यह तालिका यह साबित करती है कि दी गई आयतें तार्किक, प्रमाणिक और न्यायिक दृष्टिकोण से गलत हैं और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 101: "और (भला) तुम क्योंकर काफ़िर बन जाओगे हालांकि तुम्हारे सामने ख़ुदा की आयतें (बराबर) पढ़ी जाती हैं और उसके रसूल (मोहम्मद) भी तुममें (मौजूद) हैं और जो शख़्स ख़ुदा से वाबस्ता हो वह (तो) जरूर सीधी राह पर लगा दिया गया।"
(सूरह आल-इम्रान 3:101)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** किसी को काफ़िर या विश्वास से बाहर मानने के लिए, तर्क और प्रमाण की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति प्रमाण के आधार पर सही है, उसे सही समझा जाता है।
- **आलोचना:** इस आयत में कहा गया है कि जिस व्यक्ति के पास आयतें और रसूल (मोहम्मद) मौजूद हैं, वह काफ़िर नहीं हो सकता। यह बयान बिना किसी प्रमाण या तर्क के किया गया है। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, यह परिभाषा केवल विश्वासों पर आधारित है, न कि वास्तविक तर्क पर।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** यह आयत बिना किसी तर्क के, एक व्यक्ति के विश्वास की सत्यता का निर्धारण करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।

---

2. आयत 102: "ऐ ईमान वालों ख़ुदा से डरो जितना उससे डरने का हक़ है और तुम (दीन) इस्लाम के सिवा किसी और दीन पर हरगिज़ न मरना।"
(सूरह आल-इम्रान 3:102)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** कोई व्यक्ति अपनी आस्था में स्वतंत्र होता है, और आस्था पर कोई बाध्यता नहीं होनी चाहिए।
- **आलोचना:** यह आयत इस्लाम के सिवा किसी अन्य धर्म को न मानने की बात कहती है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और तर्क के अधिकार के खिलाफ है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी व्यक्ति को उसकी आस्था और विश्वास के कारण बंधित नहीं किया जा सकता।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** इस आयत में व्यक्ति की स्वतंत्र आस्था को एक निश्चित दीन पर प्रतिबंधित किया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है।

---

3. आयत 103: "और तुम सब के सब (मिलकर) ख़ुदा की रस्सी मज़बूती से थामे रहो और आपस में (एक दूसरे) के फूट न डालो और अपने हाल (ज़ार) पर ख़ुदा के एहसान को तो याद करो जब तुम आपस में (एक दूसरे के) दुश्मन थे तो ख़ुदा ने तुम्हारे दिलों में (एक दूसरे की) उल्फत पैदा कर दी तो तुम उसके फ़ज़ल से आपस में भाई भाई हो गए और तुम गोया सुलगती हुयी आग की भट्टी (दोज़ख) के लब पर (खड़े) थे गिरना ही चाहते थे कि ख़ुदा ने तुमको उससे बचा लिया तो ख़ुदा अपने एहकाम यू वाज़ेह करके बयान करता है ताकि तुम राहे रास्त पर आ जाओ।"
(सूरह आल-इम्रान 3:103)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी समूह की एकता को तर्क और सही निर्णय से कायम किया जाता है, न कि केवल धार्मिक आदेशों से।
- आलोचना: यह आयत समूह की एकता को एक धार्मिक आदेश के रूप में प्रस्तुत करती है, लेकिन इसे बिना तर्क या प्रमाण के किया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, एकता और संबंध तर्क और सामूहिक निर्णयों से आए तो अधिक सार्थक और स्थिर होती है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत एकता की स्थापना के लिए धार्मिक आदेश का पालन करने की बात करती है, जबकि न्याय दर्शन के अनुसार, यह सामूहिक और तार्किक निर्णयों से स्थापित होनी चाहिए।

---

4. आयत 104: "और तुमसे एक गिरोह ऐसे (लोगों का भी) तो होना चाहिए जो (लोगों को) नेकी की तरफ़ बुलाए अच्छे काम का हुक्म दे और बुरे कामों से रोके और ऐसे ही लोग (आख़ेरत में) अपनी दिली मुरादें पायेंगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:104)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी समाज या समूह का मार्गदर्शन तर्क और प्रमाण के आधार पर किया जाता है।
- आलोचना: यह आयत एक गिरोह के गठन को अनिवार्य बताती है जो अच्छे कामों को बढ़ावा दे और बुरे कामों को रोके, लेकिन इसमें तर्क और प्रमाण का अभाव है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी समुदाय या समूह के कामों को नियंत्रित करने के लिए सही तर्क और न्यायपूर्ण सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।
- सिद्धांत का उल्लंघन: यह आयत बिना प्रमाण और तर्क के लोगों को अच्छे कामों को करने और बुरे कामों को रोकने का आदेश देती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।

---

5. आयत 105: "और तुम (कहीं) उन लोगों के ऐसे न हो जाना जो आपस में फूट डाल कर बैठ रहे और रौशन (दलील) आने के बाद भी एक मुँह एक ज़बान न रहे और ऐसे ही लोगों के वास्ते बड़ा (भारी) अज़ाब है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:105)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** किसी भी व्यक्ति या समूह के द्वारा की गई गलती को प्रमाण और तर्क से सिद्ध किया जाता है।
- **आलोचना:** यह आयत लोगों को एकता बनाए रखने के लिए कहती है, लेकिन यह बिना तर्क या प्रमाण के किया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी की गलती को प्रमाण के आधार पर परखा जाना चाहिए, न कि केवल विश्वास के आधार पर।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** यह आयत बिना किसी प्रमाण या तर्क के लोगों के कृत्यों को गलत ठहराती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:101	बिना तर्क के विश्वास पर आधारित	बिना तर्क के निष्कर्ष	किसी को काफ़िर ठहराने का आधार नहीं	स्वतंत्र निर्णय का उल्लंघन	बिना प्रमाण के आरोप	विश्वास का थोपना	आस्था की स्वतंत्रता का उल्लंघन
3:102	स्वतंत्रता का उल्लंघन	धर्म परिवर्तन पर दबाव	स्वतंत्रता की अनदेखी	आस्था का उल्लंघन	बिना तर्क के धर्म पर प्रतिबंध	आस्था की स्वतंत्रता का उल्लंघन	किसी पर आस्था का दबाव
3:103	बिना तर्क के एकता का आदेश	सामूहिक निर्णय का उल्लंघन	सामूहिक निर्णय की कमी	तर्क का अभाव	बिना तर्क के आदेश	कर्तव्यों की अनदेखी	बिना तर्क के आदेश
3:104	बिना तर्क के समूह गठन	बिना तर्क के नैतिक आदेश	आदेश की कमी	बिना प्रमाण के कार्य	बिना प्रमाण के आदेश	सामूहिक आदेश का उल्लंघन	किसी पर आदेश का दबाव
3:10	बिना	प्रमाण की	विश्वास पर	बिना तर्क	बिना	किसी पर	किसी की

5	**प्रमाण के आरोप**	**कमी**	**आरोप**	**के आदेश**	**प्रमाण के आरोप**	**आरोप लगाने का आधार नहीं**	**गलती का प्रमाण नहीं**

इस तालिका से स्पष्ट है कि दी गई आयतें न्याय दर्शन और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ हैं। इन आयतों में कोई प्रमाण, तर्क या न्यायपूर्ण विचार नहीं है, जो उनके तर्कसंगत होने को प्रमाणित करता हो।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 106: "उस दिन से डरो जिस दिन कुछ यू लोगों के चेहरे तो सफेद नूरानी होंगे और कुछ (लोगों) के चेहरे सियाह जिन लोगों के मुहँ में कालिक होगी (उनसे कहा जायेगा) हाए क्यों तुम तो इमान लाने के बाद काफ़िर हो गए थे अच्छा तो (लो) (अब) अपने कुफ्रकी सज़ा में अज़ाब (के मज़े) चखो।"
(सूरह आल-इम्रान 3:106)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: दोषी को सजा देने से पहले, तर्क और प्रमाण के आधार पर दोष साबित किया जाता है। केवल विश्वास के आधार पर किसी को सज़ा नहीं दी जा सकती।**
- **आलोचना: इस आयत में काफ़िरों को सजा दी जा रही है, लेकिन यह सजा केवल उनके विश्वास के आधार पर दी जा रही है, बिना यह प्रमाणित किए कि उन्होंने कोई विशेष ग़लती की हो। न्याय दर्शन के अनुसार, यह तर्कपूर्ण नहीं है क्योंकि विश्वास के आधार पर सज़ा देना बिना प्रमाण और तर्क के किया जा रहा है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में किसी को सज़ा देने का आधार केवल उनका विश्वास है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है, क्योंकि सजा तर्क और प्रमाण पर आधारित होनी चाहिए।**

---

2. आयत 107: "और जिनके चेहरे पर नूर बरसता होगा वह तो ख़ुदा की रहमत (बहिश्त) में होंगे (और) उसी में सदा रहेंगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:107)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत**: किसी को पुरस्कृत या दंडित करने के लिए वास्तविक कार्यों और तर्कों की आवश्यकता होती है।
- **आलोचना**: यह आयत कहती है कि जिनके चेहरे पर नूर होगा, वे स्वर्ग में रहेंगे। हालांकि, यह बिना किसी तर्क या प्रमाण के किया गया बयान है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी व्यक्ति को पुरस्कृत करने के लिए उनके कार्यों या तर्क का मूल्यांकन किया जाता है।
- **सिद्धांत का उल्लंघन**: इस आयत में किसी के कार्यों का मूल्यांकन किए बिना केवल "चेहरे पर नूर" के आधार पर स्वर्ग का वादा किया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है।

---

3. आयत 108: "ये ख़ुदा की आयतें हैं जो हम तुमको ठीक (ठीक) पढ़ के सुनाते हैं और ख़ुदा सारे जहांन के लोगों (से किसी) पर ज़ुल्म करना नहीं चाहता।"
(सूरह आल-इम्रान 3:108)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत**: कोई भी कानून या आदेश सजा देने से पहले दोषी व्यक्ति के खिलाफ सबूत और प्रमाण की आवश्यकता होती है।
- **आलोचना**: यह आयत कहती है कि "ख़ुदा किसी पर ज़ुल्म नहीं करता", लेकिन यह बिना किसी प्रमाण के विश्वास पर आधारित है। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी आदेश को लागू करने के लिए तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है।
- **सिद्धांत का उल्लंघन**: यह आयत केवल विश्वास पर आधारित है, और इसमें तर्क या प्रमाण की कमी है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है।

---

4. आयत 109: "और जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है (सब) ख़ुदा ही का है और (आख़िर) सब कामों की रूजू ख़ुदा ही की तरफ़ है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:109)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत**: किसी भी व्यक्ति या चीज़ के अधिकार और स्वामित्व को प्रमाण के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

- **आलोचना: यह आयत कहती है कि "जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है, वह सब ख़ुदा का है", लेकिन इसमें कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया गया है कि यह सही है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी स्वामित्व या अधिकार का निर्धारण प्रमाण और तर्क पर आधारित होना चाहिए।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में बिना प्रमाण के स्वामित्व की बात की गई है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।**

---

5. आयत 110: "तुम क्या अच्छे गिरोह हो कि (लोगों की) हिदायत के वास्ते पैदा किये गए हो तुम (लोगों को) अच्छे काम का हुक्म करते हो और बुरे कामों से रोकते हो और ख़ुदा पर ईमान रखते हो और अगर एहले किताब भी (इसी तरह) ईमान लाते तो उनके हक़ में बहुत अच्छा होता उनमें से कुछ ही तो इमानदार हैं और अक्सर बदकार (110)"
(सूरह आल-इम्रान 3:110)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी व्यक्ति या समूह के कार्यों का मूल्यांकन तर्क और प्रमाण से किया जाता है।**
- **आलोचना: यह आयत कहती है कि यदि एहले किताब ईमान लाते, तो उनके लिए बहुत अच्छा होता, लेकिन इसमें कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया है। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, यह विचार केवल विश्वासों और रायों पर आधारित है, न कि तर्क पर।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में एक समूह के व्यवहार को बिना तर्क और प्रमाण के मूल्यांकन किया गया है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।**

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:106	बिना तर्क के सजा	बिना प्रमाण के सजा	विश्वास पर आधारित	विश्वास के आधार पर दंड	तर्क की कमी	न्यायपूर्ण सजा का अभाव	स्वतंत्र विश्वास का उल्लंघन

			सजा				
3:107	बिना तर्क के पुरस्कृत करना	तर्क और प्रमाण का अभाव	कार्यों का मूल्यांकन न करना	केवल विश्वास पर पुरस्कृत करना	प्रमाण का अभाव	बिना प्रमाण के इनाम	किसी के कर्म का मूल्यांकन न करना
3:108	तर्क या प्रमाण की कमी	तर्क का अभाव	विश्वास पर आधारित आदेश	कोई प्रमाण नहीं	प्रमाण की कमी	आदेश का पालन बिना प्रमाण के	तर्क और प्रमाण का अभाव
3:109	बिना प्रमाण के स्वामित्व	स्वामित्व की तर्कहीनता	प्रमाण की कमी	प्रमाण की कमी	तर्क का अभाव	बिना प्रमाण के अधिकार	स्वामित्व का प्रमाण नहीं
3:110	विश्वास पर आधारित मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	विश्वास का आधार	विश्वास के आधार पर मूल्यांकन	प्रमाण की कमी	तर्कहीन मूल्यांकन	किसी पर विश्वास का दबाव

यह तालिका दिखाती है कि दी गई आयतें न्याय दर्शन और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ हैं। इन आयतों में बिना प्रमाण और तर्क के विश्वास पर आधारित मूल्यांकन और दंड दिए गए हैं, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 111: "मुसलमानों, ये लोग मामूली अज़ीयत के सिवा तुम्हें हरगिज़ ज़रर नही पहुचा सकते और अगर तुमसे लड़ेंगे तो उन्हें तुम्हारी तरफ़ पीठ ही करनी होगी और फिर उनकी कहीं से मदद भी नहीं पहुचेगी।" (सूरह आल-इम्रान 3:111)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: यह सिद्धांत कहता है कि किसी को किसी अन्य व्यक्ति से नुकसान पहुँचाने का अधिकार तब होता है जब उस व्यक्ति का अपराध साबित हो। सजा को प्रमाण और तर्क की आवश्यकता होती है।
- आलोचना: इस आयत में यह दावा किया गया है कि "तुमसे लड़ेंगे तो उन्हें तुम्हारी तरफ़ पीठ ही करनी होगी", यह बिना किसी आधार या तर्क के किया गया बयान है। इसका कोई प्रमाण या न्यायपूर्ण आधार नहीं है, क्योंकि यह लड़ाई का परिणाम केवल विश्वास और इच्छा पर आधारित है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में बिना तर्क और प्रमाण के यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विरोधियों को हारना ही होगा। यह न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है, क्योंकि किसी भी संघर्ष का परिणाम केवल तर्क और परिस्थितियों पर आधारित होना चाहिए।

---

2. आयत 112: "और जहाँ कहीं हत्ते चढ़े उनपर रूसवाई की मार पड़ी मगर ख़ुदा के अहद (या) और लोगों के अहद के ज़रिये से (उनको कहीं पनाह मिल गयी) और फिर हेरफेर के खुदा के गज़ब में पड़ गए और उनपर मोहताजी की मार (अलग) पड़ी ये (क्यों) इस सबब से कि वह ख़ुदा की आयतों से इन्कार करते थे और पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल करते थे ये सज़ा उसकी है कि उन्होंने नाफ़रमानी की और हद से गुज़र गए थे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:112)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी भी व्यक्ति को सजा देने से पहले, उसके अपराध को तर्क और प्रमाण के आधार पर साबित करना चाहिए। बिना सबूत के कोई सजा नहीं दी जा सकती।
- आलोचना: इस आयत में यह दावा किया गया है कि उन्होंने ख़ुदा की आयतों से इन्कार किया और पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल किया, लेकिन यह किसी प्रमाण या तर्क पर आधारित नहीं है। केवल विश्वास और कथनों पर आधारित सजा दी जा रही है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है।
- सिद्धांत का उल्लंघन: बिना प्रमाण के, केवल विश्वास और आरोप के आधार पर सजा देना न्याय दर्शन के सिद्धांतों के खिलाफ है।

---

3. आयत 113: "और ये लोग भी सबके सब यकसा नहीं हैं (बल्कि) एहले किताब से कुछ लोग तो ऐसे हैं कि (ख़ुदा के दीन पर) इस तरह साबित क़दम हैं कि रातों को ख़ुदा की आयतें पढ़ा करते हैं और वह बराबर सजदे किया करते हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:113)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय में समानता का सिद्धांत है, जहां सभी व्यक्तियों का मूल्यांकन उनके कार्यों के आधार पर किया जाता है, न कि उनके विश्वासों या धर्म के आधार पर।**
- **आलोचना: यह आयत कहती है कि "कुछ लोग इस तरह साबित क़दम हैं", लेकिन इसमें कोई प्रमाण या तर्क नहीं दिया गया है कि यह "साबित क़दम" क्यों हैं। न्याय दर्शन के अनुसार, यह केवल विश्वास पर आधारित मूल्यांकन है, जो तर्क और प्रमाण पर आधारित नहीं है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: यहां कार्यों का मूल्यांकन विश्वास और कथन पर आधारित है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।**

---

4. आयत 114: "खुदा और रोज़े आख़ेरत पर ईमान रखते हैं और अच्छे काम का तो हुक्म करते हैं और बुरे कामों से रोकते हैं और नेक कामों में दौड़ पड़ते हैं और यही लोग तो नेक बन्दों से हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:114)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी के कार्यों का मूल्यांकन तर्क, प्रमाण और नैतिकता के आधार पर किया जाता है।**
- **आलोचना: यह आयत कहती है कि "यही लोग तो नेक बन्दों से हैं", लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया कि उन्होंने कौन से तर्कपूर्ण या नैतिक कार्य किए हैं। केवल विश्वास और कथनों पर आधारित है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में किसी व्यक्ति या समूह के अच्छे कार्यों का मूल्यांकन विश्वास और कथन के आधार पर किया गया है, जबकि न्याय दर्शन में तर्क और प्रमाण का महत्व होता है।**

---

5. आयत 115: "और वह जो कुछ नेकी करेंगे उसकी हरगिज़ नाक़द्री न की जाएगी और ख़ुदा परहेज़गारों से ख़ूब वाक़िफ़ है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:115)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: किसी के अच्छे कार्यों को सजा या पुरस्कार देने से पहले उनके कार्यों का तर्क और प्रमाण पर आधारित मूल्यांकन होना चाहिए।**

- **आलोचना: इस आयत में कहा गया है कि "जो कुछ नेकी करेंगे उसकी हरगिज़ नाक़द्री न की जाएगी", लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया कि नेकी के मापदंड क्या हैं। न्याय दर्शन के अनुसार, नेकी को तर्क और प्रमाण से आंका जाना चाहिए।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में नेकी का मूल्यांकन केवल विश्वास पर आधारित है, जबकि न्याय दर्शन में तर्क और प्रमाण पर आधारित मूल्यांकन का महत्व है।**

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:111	बिना तर्क के परिणाम	बिना प्रमाण के परिणाम	विश्वास पर आधारित परिणाम	तर्क की कमी	परिणाम पर विश्वास आधारित	तर्क की कमी	बिना प्रमाण के निष्कर्ष
3:112	बिना प्रमाण के सजा	सजा का प्रमाण नहीं	विश्वास पर आधारित सजा	विश्वास के आधार पर सजा	तर्क और प्रमाण की कमी	बिना तर्क के दंड	न्याय का उल्लंघन
3:113	बिना तर्क पर आधारित मूल्यांकन	मूल्यांकन में तर्क का अभाव	विश्वास पर आधारित मूल्यांकन	तर्क का अभाव	प्रमाण की कमी	कार्यों का मूल्यांकन नहीं	बिना प्रमाण के मूल्यांकन
3:114	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	मूल्यांकन में तर्क का अभाव	कार्यों का प्रमाण नहीं	तर्क की कमी	बिना प्रमाण के निष्कर्ष	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	कार्यों का उचित मूल्यांकन नहीं
3:115	कार्यों का मूल्यांकन	कार्यों का प्रमाण	विश्वास पर आधारित	बिना प्रमाण के	कार्यों का तर्कपूर्ण	बिना तर्क के	बिना तर्क के निष्कर्ष

बिना प्रमाण	**नहीं**	**कार्य मूल्यांकन**	**मूल्यांकन**	**मूल्यांकन नहीं**	**मूल्यांकन**

इस तालिका से स्पष्ट है कि दी गई आयतें न्याय दर्शन और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ हैं। इनमें कार्यों का मूल्यांकन और सजा देने का तरीका केवल विश्वास पर आधारित है, जिसमें तर्क और प्रमाण का अभाव है, जो न्याय और तर्कपूर्ण दृष्टिकोण के खिलाफ है।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 116: "बेशक जिन लोगों ने कुफ्रइख़्तेयार किया ख़ुदा (के अज़ाब) से बचाने में हरगिज़ न उनके माल ही कुछ काम आएंगे न उनकी औलाद और यही लोग जहन्नुमी हैं और हमेशा उसी में रहेंगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:116)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी व्यक्ति को सजा देने से पहले उसके अपराध को स्पष्ट प्रमाण और तर्क द्वारा साबित किया जाना चाहिए।**
- **आलोचना: इस आयत में बिना किसी प्रमाण के यह दावा किया गया है कि कुफ्र करने वाले लोग हमेशा जहन्नुम में रहेंगे। यह बिना तर्क और प्रमाण के एक ठोस निष्कर्ष है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी के कर्मों का मूल्यांकन तर्क और प्रमाण से किया जाना चाहिए, न कि केवल विश्वास और बयान से।**
- **सिद्धांत का उल्लंघन: इस आयत में सजा देने का तरीका बिना किसी प्रमाण के आधारित है, जो न्याय के सिद्धांत के खिलाफ है।**

---

2. आयत 117: "दुनिया की चन्द रोज़ा ज़िन्दगी में ये लोग जो कुछ (ख़िलाफ़े शरा) ख़र्च करते हैं उसकी मिसाल अन्धड़ की मिसाल है जिसमें बहुत पाला हो और वह उन लोगों के खेत पर जा पड़े जिन्होंने (कुफ्रकी वजह से) अपनी जानों पर सितम ढाया हो और फिर पाला उसे मार के (नास कर दे) और ख़ुदा ने उनपर जुल्म कुछ नहीं किया बल्कि उन्होंने आप अपने ऊपर ज़ुल्म किया।"
(सूरह आल-इम्रान 3:117)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** न्याय में किसी व्यक्ति के कर्मों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क से किया जाता है। किसी के कृत्य का परिणाम केवल आंतरिक कारणों से नहीं बल्कि बाहरी कारकों से भी जुड़ा होता है।
- **आलोचना:** इस आयत में यह कहा गया है कि "ख़ुदा ने उनपर जुल्म कुछ नहीं किया बल्कि उन्होंने आप अपने ऊपर जुल्म किया", लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि किस तरह के कृत्य या कारणों से यह परिणाम हुआ। बिना प्रमाण के सजा का कारण केवल तर्क पर आधारित नहीं है।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** यह आयत न्याय दर्शन के सिद्धांत के खिलाफ है क्योंकि इसमें बिना प्रमाण और तर्क के कृत्य का परिणाम दिया गया है।

---

3. आयत 118: "ऐ ईमानदारों अपने (मोमिनीन) के सिवा (ग़ैरो को) अपना राज़दार न बनाओ (क्योंकि) ये ग़ैर लोग तुम्हारी बरबादी में कुछ (कसर) उठा नहीं रखेंगे (बल्कि जितना ज़्यादा तकलीफ़) में पड़ोगे उतना ही ये लोग ख़ुश होंगे दुश्मनी तो उनके मुह से टपकती है और जो (बुग़ज़ व हसद) उनके दिलों में भरा है वह कहीं उससे बढ़कर है हमने तुमसे (अपने) एहकाम साफ़ साफ़ बयान कर दिये अगर तुम समझ रखते हो।"
(सूरह आल-इम्रान 3:118)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** न्याय में किसी व्यक्ति के कार्यों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क के आधार पर होना चाहिए, न कि व्यक्तिगत भावना या पूर्वाग्रह पर।
- **आलोचना:** इस आयत में यह कहा गया है कि "ये ग़ैर लोग तुम्हारी बरबादी में कुछ कसर नहीं उठायेंगे", लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया कि कौन से कार्यों के आधार पर यह दावा किया गया है। यह बयान केवल व्यक्तिगत भावना और आरोपों पर आधारित है, न कि तर्क और प्रमाण पर।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** इस आयत में न्याय का उल्लंघन हो रहा है, क्योंकि यह बिना प्रमाण और तर्क के आधार पर समूहों के बारे में धारणा बना रहा है।

---

4. आयत 119: "ऐ लोगों तुम ऐसे (सीधे) हो कि तुम उनसे उल्फत रखते हो और वह तुम्हें (ज़रा भी) नहीं चाहते और तुम तो पूरी किताब (ख़ुदा) पर ईमान रखते हो और वह ऐसे नहीं हैं (मगर) जब तुमसे मिलते हैं तो कहने लगते हैं कि हम भी ईमान लाए और जब अकेले में होते हैं तो तुम पर गुस्से के मारे उँगलिया काटते हैं (ऐ रसूल) तुम कह दो कि (काटना क्या) तुम अपने गुस्से में जल मरो जो बातें तुम्हारे दिलों में हैं बेशक ख़ुदा ज़रूर

जानता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:119)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** न्याय का सिद्धांत कहता है कि किसी का मूल्यांकन उसके कार्यों के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि उसके विचारों या व्यक्तित्व पर।
- **आलोचना:** इस आयत में यह कहा गया है कि "जो बातें तुम्हारे दिलों में हैं बेशक ख़ुदा ज़रूर जानता है", लेकिन यह बिना किसी प्रमाण के एक मनोवैज्ञानिक दावे पर आधारित है। न्याय के सिद्धांत के अनुसार, किसी व्यक्ति के कार्यों और उनके परिणामों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क से किया जाना चाहिए।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** इस आयत में व्यक्तिगत विचारों और गुस्से को कारण माना गया है, जबकि न्याय दर्शन में केवल कार्यों का ही मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

---

5. आयत 120: "(ऐ ईमानदारों) अगर तुमको भलाई छू भी गयी तो उनको बुरा मालूम होता है और जब तुमपर कोई भी मुसीबत पड़ती है तो वह ख़ुश हो जाते हैं और अगर तुम सब्र करो और परहेज़गारी इख़्तेयार करो तो उनका फ़रेब तुम्हें कुछ भी ज़रर नहीं पहुचाएगा (क्योंकि) ख़ुदा तो उनकी कारस्तानियों पर हावी है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:120)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत:** किसी के कृत्य का मूल्यांकन निष्पक्षता, तर्क और प्रमाण के आधार पर किया जाता है।
- **आलोचना:** इस आयत में कहा गया है कि "उनका फ़रेब तुम्हें कुछ भी ज़रर नहीं पहुचाएगा", लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उनके फ़रेब को किस आधार पर नकारा जा रहा है। यह बयान बिना किसी प्रमाण के केवल आरोप पर आधारित है।
- **सिद्धांत का उल्लंघन:** बिना प्रमाण और तर्क के, केवल आरोपों और विश्वासों के आधार पर किसी के कार्यों का मूल्यांकन करना न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है।

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आय	न्याय	वैशेषिक	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर	भगवद	सार्वभौमिक

त	दर्शन	दर्शन			मीमांसा (वेदा)	गीता	मानवता
3:116	बिना तर्क के सजा	बिना प्रमाण के सजा	विश्वास पर आधारित सजा	बिना प्रमाण के परिणाम	विश्वास पर आधारित सजा	बिना प्रमाण के निष्कर्ष	बिना प्रमाण के निष्कर्ष
3:117	बिना तर्क के परिणाम	बिना प्रमाण के परिणाम	विश्वास पर आधारित परिणाम	बिना प्रमाण के सजा	प्रमाण के बिना सजा	बिना प्रमाण के सजा	बिना प्रमाण के सजा
3:118	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना तर्क के मूल्यांकन	व्यक्तिगत आरोपों पर आधारित मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	आरोप पर आधारित निष्कर्ष	व्यक्तिगत भावना पर आधारित मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन
3:119	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना तर्क के मूल्यांकन	बिना तर्क के मूल्यांकन	व्यक्तिगत गुस्से पर आधारित मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन
3:120	बिना प्रमाण के आरोप	बिना तर्क के आरोप	बिना प्रमाण के आरोप	बिना प्रमाण के आरोप	बिना प्रमाण के आरोप	बिना प्रमाण के आरोप	बिना प्रमाण के आरोप

इस तालिका से स्पष्ट है कि दी गई आयतें न्याय दर्शन और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ हैं। इनमें कार्यों का मूल्यांकन, सजा और परिणाम केवल विश्वास और आरोप पर आधारित हैं, जिनमें तर्क और प्रमाण की कमी है, जो न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 121:
"और (ऐ रसूल) एक वक़्त वो भी था जब तुम अपने बाल बच्चों से तड़के ही निकल खड़े हुए और मोमिनीन को लड़ाई के मोर्चों पर बिठा रहे थे और ख़ुदा सब कुछ जानता और सुनता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:121)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय दर्शन के अनुसार, किसी व्यक्ति के कार्यों का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क के आधार पर किया जाता है। इस आयत में यह वर्णन किया गया है कि जब रसूल और मुसलमानों ने युद्ध में भाग लिया, तो ख़ुदा की मदद के बारे में बताया गया। हालांकि, इसका कोई प्रमाण नहीं दिया गया कि यह युद्ध न्यायपूर्ण था या सही कारणों से लड़ा गया।**
- **आलोचना: यहां कोई तर्क नहीं दिया गया है कि युद्ध क्यों लड़ा गया और क्या यह नैतिक दृष्टिकोण से सही था। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी युद्ध या संघर्ष को सही ठहराने के लिए तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है।**

---

2. आयत 122:
"ये उस वक़्त का वाक़या है जब तुममें से दो गिरोहों ने ठान लिया था कि पसपाई करें और फिर (सॅभल गए) क्योंकि ख़ुदा तो उनका सरपरस्त था और मोमिनीन को ख़ुदा ही पर भरोसा रखना चाहिए।"
(सूरह आल-इम्रान 3:122)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: इस सिद्धांत में यह कहा गया है कि किसी भी स्थिति में एक व्यक्ति को केवल अपने हक के लिए ही लड़ना चाहिए। यहां, दो गिरोहों ने संघर्ष से बचने की योजना बनाई, लेकिन फिर ख़ुदा पर विश्वास रखने का उल्लेख किया गया है।**
- **आलोचना: यह आयत किसी संघर्ष से बचने की प्रक्रिया का विश्लेषण करती है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं करती कि उन गिरोहों का संघर्ष क्यों था और क्या वे अपने हक के लिए लड़ रहे थे या केवल विश्वास के कारण। यह एक अस्पष्ट बयान है, जो न्यायिक आधार पर पूरी तरह से खरा नहीं उतरता।**

---

3. आयत 123:
"यक़ीनन ख़ुदा ने जंगे बदर में तुम्हारी मदद की (बावजूद के) तुम (दुश्मन के मुक़ाबले में) बिल्कुल बे हक़ीक़त

थे (फिर भी) ख़ुदा ने फतेह दी।"
(सूरह आल-इम्रान 3:123)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: इस सिद्धांत में यह बताया गया है कि युद्ध या संघर्ष न्यायिक रूप से सही तभी होता है जब सभी पक्षों के कृत्य तर्कसंगत और प्रमाणित होते हैं। इस आयत में जंगे बदर के दौरान मुसलमानों की मदद के बारे में बताया गया है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया कि युद्ध के कारण क्या थे और क्या यह संघर्ष नैतिक रूप से सही था।**
- **आलोचना: यहां केवल युद्ध की जीत का वर्णन है, लेकिन इसका तर्क या न्यायिक मूल्यांकन नहीं किया गया है। यह आयत बिना तर्क के युद्ध की जीत को एक दिव्य आशीर्वाद के रूप में प्रस्तुत करती है, जो न्याय दर्शन के अनुसार अप्रतिबद्ध है।**

---

4. आयत 124:
"बस तुम ख़ुदा से डरते रहो ताकि (उनके) शुक्रगुज़ार बनो (ऐ रसूल) उस वक़्त तुम मोमिनीन से कह रहे थे कि क्या तुम्हारे लिए काफ़ी नहीं है कि तुम्हारा परवरदिगार तीन हज़ार फ़रिश्ते आसमान से भेजकर तुम्हारी मदद करे हाँ (ज़रूर काफ़ी है)।"
(सूरह आल-इम्रान 3:124)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: इस सिद्धांत में यह आवश्यक है कि कोई निर्णय या सहायता तर्क और निष्पक्षता पर आधारित हो, न कि केवल विश्वास या दिव्य मदद पर। इस आयत में यह कहा गया है कि तीन हजार फ़रिश्ते मदद के लिए भेजे गए थे, लेकिन यह नहीं बताया गया कि मदद का तर्क क्या था और क्या यह उचित था।**
- **आलोचना: यहां केवल दिव्य सहायता की बात की गई है, लेकिन कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया कि इस मदद की आवश्यकता क्यों थी। न्याय दर्शन के अनुसार, यह बयान केवल विश्वास और धार्मिक भावना पर आधारित है, न कि तर्क और प्रमाण पर।**

---

5. आयत 125:
"बल्कि अगर तुम साबित क़दम रहो और (रसूल की मुख़ालेफ़त से) बचो और कुफ़्फ़ार अपने (जोश में) तुमपर चढ़ भी आये तो तुम्हारा परवरदिगार ऐसे पांचहज़ार फ़रिश्तों से तुम्हारी मदद करेगा जो निशाने जंग

लगाए हुए डटे होंगे और ख़ुदा ने ये मदद सिर्फ़ तुम्हारी ख़ुशी के लिए की है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:125)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

- **न्याय दर्शन का सिद्धांत: न्याय दर्शन के सिद्धांत में यह आवश्यक है कि किसी भी युद्ध या संघर्ष को सही ठहराने के लिए प्रमाण और तर्क होना चाहिए। यहां पर फ़रिश्तों द्वारा मदद की बात की गई है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यह युद्ध क्यों लड़ा गया और क्या यह न्यायपूर्ण था।**
- **आलोचना: यह आयत एक दिव्य सहायता के बारे में बताती है, लेकिन इसे तर्क और प्रमाण के साथ नहीं जोड़ा गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी संघर्ष की सच्चाई और नैतिकता का मूल्यांकन तर्क और प्रमाण से करना चाहिए, न कि केवल विश्वास और दिव्य हस्तक्षेप पर निर्भर रहना चाहिए।**

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:121	बिना तर्क के युद्ध	बिना प्रमाण के युद्ध	विश्वास पर आधारित युद्ध	बिना प्रमाण के युद्ध	बिना तर्क के युद्ध	बिना तर्क के युद्ध	बिना तर्क के युद्ध
3:122	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना तर्क के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन
3:123	बिना प्रमाण के सहायता	बिना तर्क के सहायता	बिना तर्क के सहायता	बिना प्रमाण के सहायता	बिना प्रमाण के सहायता	बिना तर्क के सहायता	बिना तर्क के सहायता
3:124	बिना तर्क	बिना	बिना तर्क	बिना तर्क	बिना तर्क	बिना तर्क	बिना तर्क के

	के दिव्य सहायता	प्रमाण के दिव्य सहायता	के दिव्य सहायता	के दिव्य सहायता	के दिव्य सहायता	के दिव्य सहायता	दिव्य सहायता
3:125	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता

यह तालिका यह दर्शाती है कि दी गई आयतों में किसी संघर्ष या युद्ध को सही ठहराने के लिए तर्क और प्रमाण का अभाव है। इन आयतों में केवल विश्वास, दिव्य हस्तक्षेप और आशीर्वाद पर निर्भरता है, जो न्याय दर्शन और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ है, क्योंकि ये सभी सिद्धांत तर्क और प्रमाण की मांग करते हैं।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 121:
"और (ऐ रसूल) एक वक़्त वो भी था जब तुम अपने बाल बच्चों से तड़के ही निकल खड़े हुए और मोमिनीन को लड़ाई के मोर्चों पर बिठा रहे थे और ख़ुदा सब कुछ जानता और सुनता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:121)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी कार्य या कृत्य का मूल्यांकन प्रमाण और तर्क पर आधारित होना चाहिए। यहां पर इस आयत में यह कहा गया है कि मुसलमानों ने युद्ध में भाग लिया और इस दौरान उनके विश्वास को महत्वपूर्ण बताया गया। यह आयत यह बताती है कि रसूल ने मोमिनीन को युद्ध के मोर्चों पर भेजा, लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यह युद्ध न्यायपूर्ण था या नहीं।

इस दृष्टि से, न्याय दर्शन यह कहता है कि किसी युद्ध को सही ठहराने के लिए उसके उद्देश्य और कारणों का तर्कपूर्ण मूल्यांकन होना चाहिए। इस आयत में युद्ध के कारणों का कोई ठोस तर्क नहीं दिया गया, और केवल युद्ध के दौरान दिव्य सहायता और विश्वास का जिक्र किया गया है, जो तर्क की बजाय विश्वास और धार्मिक भावना पर आधारित है।

आलोचनाः

यह आयत केवल युद्ध में भागीदारी को एक दिव्य आशीर्वाद के रूप में प्रस्तुत करती है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं करती कि क्या यह संघर्ष नैतिक दृष्टिकोण से सही था। इसलिए यह आयत न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है, क्योंकि कोई ठोस प्रमाण या तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया।

---

2. आयत 122:
"ये उस वक़्त का वाक़्या है जब तुममें से दो गिरोहों ने ठान लिया था कि पसपाई करें और फिर (सॅभल गए) क्योंकि ख़ुदा तो उनका सरपरस्त था और मोमिनीन को ख़ुदा ही पर भरोसा रखना चाहिए।"
(सूरह आल-इम्रान 3:122)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

न्याय दर्शन में यह सिद्धांत है कि किसी भी संघर्ष या युद्ध को न्यायिक दृष्टिकोण से सही ठहराने के लिए प्रमाण और तर्क की आवश्यकता होती है। यहां, दो गिरोहों के बीच के संघर्ष की चर्चा की गई है, जिसमें एक गिरोह ने संघर्ष से बचने की योजना बनाई, लेकिन फिर भी भगवान पर भरोसा रखने की बात की गई है।

यहां पर भी तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया है कि ये संघर्ष क्यों हो रहे थे और क्या यह न्यायपूर्ण था। केवल भरोसा और दिव्य संरक्षण की बात की जा रही है, जो कि बिना किसी ठोस तर्क के युद्ध को सही ठहराने का प्रयास है।

आलोचनाः

यह आयत बिना प्रमाण या तर्क के केवल विश्वास पर आधारित है और यह न्याय दर्शन के सिद्धांत से मेल नहीं खाती। कोई स्पष्ट कारण या उद्देश्य नहीं दिया गया है कि युद्ध क्यों हुआ और क्या वह न्यायिक दृष्टिकोण से उचित था।

---

3. आयत 123:
"यक़ीनन ख़ुदा ने जंगे बदर में तुम्हारी मदद की (बावजूद के) तुम (दुश्मन के मुक़ाबले में) बिल्कुल बे हक़ीक़त थे (फिर भी) ख़ुदा ने फतेह दी।"
(सूरह आल-इम्रान 3:123)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

न्याय दर्शन में यह कहा गया है कि किसी भी संघर्ष या युद्ध को सही ठहराने के लिए तर्क और प्रमाण की आवश्यकता है। इस आयत में जंगे बदर के दौरान मुसलमानों की मदद का उल्लेख किया गया है, लेकिन यह नहीं बताया गया कि युद्ध के कारण क्या थे और क्या यह संघर्ष नैतिक दृष्टिकोण से सही था।

न्याय दर्शन के अनुसार, युद्ध की जीत या हार का मूल्यांकन केवल नतीजों पर नहीं, बल्कि उस युद्ध के कारणों और तर्क पर भी किया जाना चाहिए। यहां पर केवल दिव्य मदद का जिक्र है, लेकिन इसका कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया गया है कि यह युद्ध क्यों लड़ा गया।

आलोचनाः

यह आयत केवल युद्ध की जीत का जश्न मनाती है, लेकिन युद्ध के कारणों और तर्क का विश्लेषण नहीं किया गया है। यह बिना तर्क के युद्ध को केवल दिव्य आशीर्वाद के रूप में प्रस्तुत करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।

---

4. आयत 124:
"बस तुम ख़ुदा से डरते रहो ताकि (उनके) शुक्रगुज़ार बनो (ऐ रसूल) उस वक़्त तुम मोमिनीन से कह रहे थे कि क्या तुम्हारे लिए काफ़ी नहीं है कि तुम्हारा परवरदिगार तीन हज़ार फ़रिश्ते आसमान से भेजकर तुम्हारी मदद करे हाँ (ज़रूर काफ़ी है)।"
(सूरह आल-इम्रान 3:124)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

न्याय दर्शन के सिद्धांत में यह कहा गया है कि किसी संघर्ष को न्यायपूर्ण ठहराने के लिए तर्क, प्रमाण और निष्पक्षता की आवश्यकता होती है। इस आयत में भगवान की सहायता का जिक्र किया गया है, लेकिन यह नहीं बताया गया कि मदद की आवश्यकता क्यों थी और क्या यह संघर्ष न्यायिक दृष्टिकोण से सही था।

यहां पर केवल दिव्य सहायता का उल्लेख किया गया है, लेकिन इसे तर्क और प्रमाण से नहीं जोड़ा गया है। न्याय दर्शन के अनुसार, यह आयत बिना तर्क के केवल विश्वास और दिव्य हस्तक्षेप पर निर्भर है, जो कि न्यायिक दृष्टिकोण से कमजोर है।

आलोचनाः

यह आयत केवल विश्वास और दिव्य सहायता पर आधारित है, बिना किसी ठोस तर्क या प्रमाण के। न्याय दर्शन के सिद्धांत में इसे पूरी तरह से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यहां कोई स्पष्ट कारण या तर्क नहीं दिया गया है कि युद्ध क्यों लड़ा गया और क्यों मदद की आवश्यकता थी।

---

5. आयत 125:
"बल्कि अगर तुम साबित क़दम रहो और (रसूल की मुख़ालेफ़त से) बचो और कुफ़्फ़ार अपने (जोश में) तुमपर चढ़ भी आये तो तुम्हारा परवरदिगार ऐसे पांचहज़ार फ़रिश्तों से तुम्हारी मदद करेगा जो निशाने जंग लगाए हुए डटे होंगे और ख़ुदा ने ये मदद सिर्फ़ तुम्हारी ख़ुशी के लिए की है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:125)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी संघर्ष या युद्ध को सही ठहराने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि उसे तर्क और प्रमाण से सिद्ध किया जाए। इस आयत में दिव्य सहायता के बारे में बताया गया है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया कि इस सहायता की आवश्यकता क्यों थी और क्या यह संघर्ष न्यायिक दृष्टिकोण से उचित था।

यहां पर केवल दिव्य सहायता का जिक्र है, और इसे केवल विश्वास पर आधारित किया गया है, बिना कोई प्रमाण या तर्क दिए।

आलोचना:

यह आयत भी बिना तर्क या प्रमाण के दिव्य सहायता को प्रस्तुत करती है, और इसे तर्कपूर्ण तरीके से न्यायिक दृष्टिकोण से नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी संघर्ष को सही ठहराने के लिए तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है, जो इस आयत में अनुपस्थित है।

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:121	बिना तर्क	बिना	विश्वास	बिना	बिना तर्क	बिना तर्क	बिना तर्क के

	के युद्ध	प्रमाण के युद्ध	पर आधारित युद्ध	प्रमाण के युद्ध	के युद्ध	के युद्ध	युद्ध
3:122	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना तर्क के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन	बिना प्रमाण के मूल्यांकन
3:123	बिना प्रमाण के सहायता	बिना तर्क के सहायता	बिना तर्क के सहायता	बिना प्रमाण के सहायता	बिना प्रमाण के सहायता	बिना तर्क के सहायता	बिना तर्क के सहायता
3:124	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता
3:125	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना प्रमाण के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता	बिना तर्क के दिव्य सहायता

निष्कर्ष:

यह तालिका दर्शाती है कि दी गई आयतों में युद्ध और संघर्ष को सही ठहराने के लिए तर्क, प्रमाण और न्यायपूर्ण मूल्यांकन का अभाव है। इन आयतों में युद्ध की विजय को केवल दिव्य आशीर्वाद और विश्वास पर आधारित दिखाया गया है, लेकिन किसी प्रकार का तर्क या प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया गया है। न्याय दर्शन और सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के अनुसार, किसी भी संघर्ष या युद्ध को सही ठहराने के लिए प्रमाण और तर्क की आवश्यकता होती है, जो इन आयतों में अनुपस्थित है।

आयत विश्लेषण:

1. आयत 126:

"और ताकि इससे तुम्हारे दिल की ढारस हो और (ये तो ज़ाहिर है कि) मदद जब होती है तो ख़ुदा ही की तरफ़ से जो सब पर ग़ालिब (और) हिकमत वाला है।"

(सूरह आल-इम्रान 3:126)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी कार्य की वैधता को प्रमाण और तर्क द्वारा सिद्ध किया जाना चाहिए। यहां पर यह आयत केवल एक भावनात्मक आधार पर मदद की बात करती है, और कहा जाता है कि मदद केवल भगवान की ओर से होती है। हालांकि यह आयत यह बताती है कि सहायता दिव्य शक्ति से होती है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यह सहायता क्यों आवश्यक थी और क्या यह संघर्ष न्यायपूर्ण था।

आलोचना:

यह आयत केवल विश्वास और भगवान की मदद पर निर्भर करती है, लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया कि संघर्ष और युद्ध का उद्देश्य क्या था और क्या वह न्यायपूर्ण था। इसलिए, यह आयत तर्क या प्रमाण के बिना मदद को सही ठहराने की कोशिश करती है, जो न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता।

---

2. आयत 127:

"और यह मदद की भी तो इसलिए कि काफ़िरों के एक गिरोह को कम कर दे या ऐसा चैपट कर दे कि (अपना सा) मुँह लेकर नामुराद अपने घर वापस चले जायें।"

(सूरह आल-इम्रान 3:127)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

इस आयत में यह कहा गया है कि दिव्य मदद का उद्देश्य काफिरों के गिरोह को कम करना या उन्हें पराजित करना था। यह विचारक दृष्टिकोण से जटिल है, क्योंकि युद्ध का उद्देश्य केवल शत्रु को कम करना और उन्हें पराजित करना नहीं होना चाहिए, बल्कि एक न्यायपूर्ण कारण होना चाहिए।

न्याय दर्शन के अनुसार, कोई भी संघर्ष या युद्ध को तर्क और प्रमाण द्वारा सही ठहराया जाना चाहिए। यहां पर केवल "मदद" और "पराजय" के परिणामों का उल्लेख किया गया है, लेकिन इसका कोई तर्क या कारण नहीं दिया गया है कि युद्ध क्यों लड़ा गया और क्या यह संघर्ष नैतिक रूप से सही था।

आलोचना:

यह आयत बिना तर्क और प्रमाण के युद्ध की वजह से होने वाले परिणामों को सिर्फ दिखाती है, और यह नहीं स्पष्ट करती कि युद्ध का उद्देश्य न्यायपूर्ण था या नहीं। इसके आधार पर युद्ध को सही ठहराना न्याय दर्शन के सिद्धांत से मेल नहीं खाता।

---

3. आयत 128:
"(ऐ रसूल) तुम्हारा तो इसमें कुछ बस नहीं चाहे ख़ुदा उनकी तौबा कुबूल करे या उनको सज़ा दे क्योंकि वह ज़ालिम तो ज़रूर हैं।"
(सूरह आल-इम्रान 3:128)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

इस आयत में यह कहा गया है कि केवल भगवान ही यह तय करेंगे कि किसी को माफी मिलेगी या सजा दी जाएगी, और यह उनके कर्मों के आधार पर होगा। यह दृष्टिकोण नैतिकता के हिसाब से थोड़ी अस्पष्टता उत्पन्न करता है क्योंकि न्याय दर्शन के सिद्धांत में यह कहा जाता है कि किसी की सजा या माफी का निर्धारण केवल भगवान के बजाय तर्कपूर्ण और न्यायपूर्ण आधार पर किया जाना चाहिए।

यह आयत केवल भगवान की इच्छा और शक्ति पर निर्भर है, लेकिन न्याय दर्शन के सिद्धांत में तर्क और कारणों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए, यह आयत न्यायिक दृष्टिकोण से कमजोर प्रतीत होती है।

आलोचना:

यह आयत केवल दिव्य न्याय पर आधारित है और तर्क या प्रमाण की कमी को दर्शाती है। इसलिए, यह न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है क्योंकि तर्क और प्रमाण के आधार पर सजा या माफी का निर्णय लिया जाना चाहिए, न कि केवल दिव्य इच्छा से।

---

4. आयत 129:
"और जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है सब ख़ुदा ही का है जिसको चाहे बख़्शे और जिसको चाहे सज़ा करे और ख़ुदा बड़ा बख़्शने वाला मेहरबान है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:129)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

यह आयत यह बताती है कि भगवान के पास सभी का नियंत्रण है और वह निर्णय ले सकते हैं कि किसे माफ किया जाए और किसे सजा दी जाए। हालांकि यह विचारक दृष्टिकोण से मान्य हो सकता है, लेकिन न्याय दर्शन के सिद्धांत में यह देखा जाता है कि सजा या माफी का निर्धारण तर्क और न्याय के आधार पर होना चाहिए, न कि केवल एक दिव्य शक्ति के आधार पर।

आलोचना:

यह आयत केवल दिव्य शक्ति और इच्छा पर निर्भर करती है, लेकिन न्याय दर्शन में सजा और माफी के लिए तर्क और प्रमाण की आवश्यकता होती है। इसलिए, यह आयत न्याय दर्शन के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती।

---

5. आयत 130:
"ऐ ईमानदारों सूद दूनादून खाते न चले जाओ और ख़ुदा से डरो कि तुम छुटकारा पाओ।"
(सूरह आल-इम्रान 3:130)

न्याय दर्शन (विश्लेषण):

यह आयत सूद (ब्याज) के खिलाफ चेतावनी देती है, जो एक सामान्य आर्थिक प्रथा है। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, सूद एक असंगत और अन्यायपूर्ण आर्थिक गतिविधि हो सकती है क्योंकि यह संपत्ति के असमान वितरण को बढ़ावा देती है और सामाजिक असंतुलन का कारण बनती है। यहां पर सूद को न लेने की बात की गई है, जो समाज में आर्थिक न्याय की ओर एक कदम है।

आलोचना:

यह आयत समाज में आर्थिक समानता और न्याय की दिशा में एक सकारात्मक कदम उठाती है। हालांकि, यह आयत केवल एक धार्मिक दृष्टिकोण से इसे रोकने की बात करती है, लेकिन इसे सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से अधिक विस्तार से बताया जा सकता था।

आलोचना तालिका (Criticism Table):

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता

3:126	**बिना तर्क के मदद**	**बिना प्रमाण के मदद**	**बिना प्रमाण के मदद**	**बिना प्रमाण के मदद**	**बिना प्रमाण के मदद**	**बिना प्रमाण के मदद**	**बिना प्रमाण के मदद**
3:127	**बिना प्रमाण के पराजय**	**बिना तर्क के पराजय**	**बिना प्रमाण के पराजय**	**बिना प्रमाण के पराजय**	**बिना प्रमाण के पराजय**	**बिना प्रमाण के पराजय**	**बिना प्रमाण के पराजय**
3:128	**बिना तर्क के सज़ा**	**बिना प्रमाण के सज़ा**	**बिना प्रमाण के सज़ा**	**बिना प्रमाण के सज़ा**	**बिना प्रमाण के सज़ा**	**बिना प्रमाण के सज़ा**	**बिना प्रमाण के सज़ा**
3:129	**बिना तर्क के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**
3:130	**आर्थिक न्याय की आवश्यकता**	**सामाजिक समानता की आवश्यकता**	**सामाजिक समानता की आवश्यकता**	**सामाजिक समानता की आवश्यकता**	**आर्थिक न्याय की आवश्यकता**	**सामाजिक न्याय की आवश्यकता**	**आर्थिक न्याय की आवश्यकता**

निष्कर्ष:

इन आयतों में ज्यादातर मामलों में तर्क और प्रमाण का अभाव है, और यह केवल दिव्य हस्तक्षेप और विश्वास पर आधारित हैं। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, संघर्षों, सजा और माफी का निर्धारण तर्क, प्रमाण और न्याय के आधार पर होना चाहिए, लेकिन इन आयतों में ये तत्व अनुपस्थित हैं। कुछ आयतें जैसे 3:130 में आर्थिक न्याय की ओर एक कदम बढ़ने की कोशिश की गई है, लेकिन इसे और स्पष्ट रूप से सामाजिक और न्यायिक दृष्टिकोण से बताया जा सकता था।

आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण (Criticism of Verses)

हमने जो आयतें प्रस्तुत की हैं, उनका आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए, हम इन्हें न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों से देखेंगे, और यह सिद्ध करेंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक नहीं हैं और ये सभी मानवता के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकतीं।

---

1. आयत 131:

"और जहन्नुम की उस आग से डरो जो काफ़िरों के लिए तैयार की गयी है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:131)

न्याय दर्शन (Nyaya Darshan) के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन में न्याय का आधार तर्क, प्रमाण और कारण है। इस आयत में यह दावा किया गया है कि काफिरों के लिए एक विशेष दंड (जाहन्नुम की आग) तैयार है। यह तर्क और प्रमाण के बिना केवल विश्वास पर आधारित है।

न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, दंड को केवल तब ही उचित माना जा सकता है जब उसके पीछे स्पष्ट तर्क, प्रमाण और वैध कारण हो। इस आयत में तर्क की कमी है और यह केवल विश्वास और डर का उपयोग करती है, जो सार्वभौमिक रूप से सभी मानवों के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकता।

विशेष आलोचना:

यह आयत सार्वभौमिक नहीं है, क्योंकि यह केवल "काफिरों" के लिए एक दंड की बात करती है, जबकि मानवता का मूल अधिकार है कि सभी को समान न्याय मिले। इस प्रकार, यह आयत अन्य धर्मों, विचारधाराओं, या विश्वासों के लिए अन्यायपूर्ण है।

---

2. आयत 132:

"और ख़ुदा और रसूल की फ़रमाबरदारी करो ताकि तुम पर रहम किया जाए।"
(सूरह आल-इम्रान 3:132)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी धर्म या विचारधारा को तर्क और न्याय के सिद्धांतों से मापा जाना चाहिए। इस आयत में कहा गया है कि केवल ख़ुदा और रसूल की फ़रमाबरदारी से रहम प्राप्त होगा। हालांकि यह आयत विश्वास पर आधारित है, लेकिन इसका कोई तर्क या प्रमाण नहीं है कि यह हर किसी के लिए लागू होता है।

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को रहम और दया के लिए इस प्रकार के निर्देशों का पालन करना नहीं चाहिए, केवल तब जब वह तर्क और प्रमाण से समर्थित हो। यह आयत विश्वस्तर पर हर किसी के लिए समान रूप से लागू नहीं हो सकती क्योंकि यह एक विशिष्ट धार्मिक विश्वास पर आधारित है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय के लिए है, जबकि अन्य धार्मिक समुदायों के लिए यह बेमानी हो सकती है। सभी मानवता को समान रूप से न्याय देने के सिद्धांत से यह असंगत है।

---

3. आयत 133:

"और अपने परवरदिगार के (सबब) बख़शिश और जन्नत की तरफ़ दौड़ पड़ो जिसकी (वुसअत सारे) आसमान और ज़मीन के बराबर है और जो परहेज़गारों के लिये मुहय्या की गयी है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:133)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

इस आयत में यह कहा गया है कि जन्नत परहेज़गारों के लिए है। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, "परहेज़गार" के क़ीमत को केवल एक धर्म विशेष के आधार पर परिभाषित नहीं किया जा सकता। किसी व्यक्ति का धार्मिक आचार और विश्वासों के आधार पर उसकी गरिमा और पुरस्कार का निर्धारण सार्वभौमिक दृष्टिकोण से असंगत है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल उन लोगों के लिए है जो इस्लाम में विश्वास करते हैं, जबकि यह अन्य धर्मों या विश्वासों के अनुयायियों के लिए लागू नहीं हो सकती। इसका यह अर्थ है कि यह आयत सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य नहीं हो सकती।

---

4. आयत 134:

"जो ख़ुशहाली और कठिन वक़्त में भी (ख़ुदा की राह पर) ख़र्च करते हैं और गुस्से को रोकते हैं और लोगों (की ख़ता) से दरगुज़र करते हैं और नेकी करने वालों से अल्लाह उलफ़त रखता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:134)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

यह आयत उन लोगों की सराहना करती है जो अच्छे काम करते हैं। हालांकि, यह अच्छा है कि इस आयत में "नेकी" को बढ़ावा दिया गया है, लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यह "नेकी" क्या है और किस आधार पर इसे परिभाषित किया गया है।

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, "नेकी" और "गुस्से को रोकना" जैसे गुणों को तर्क, प्रमाण और विवेक के आधार पर परिभाषित किया जाना चाहिए। यह आयत केवल एक धार्मिक दृष्टिकोण से इन गुणों को प्रस्तुत करती है, जो सार्वभौमिक रूप से सभी मानवता के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकता।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय के अनुयायियों के लिए है, और यह अन्य संस्कृतियों और समाजों के लिए असंगत हो सकती है।

---

5. आयत 135:

"और लोग इत्तिफ़ाक़ से कोई बदकारी कर बैठते हैं या आप अपने ऊपर ज़ुल्म करते हैं तो ख़ुदा को याद करते हैं और अपने गुनाहों की माफ़ी मांगते हैं और ख़ुदा के सिवा गुनाहों का बख़्शने वाला और कौन है और जो (क़ूसूर) वह (नागहानी) कर बैठे तो जानबूझ कर उसपर हट नहीं करते।"
(सूरह आल-इम्रान 3:135)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

इस आयत में गुनाहों के लिए माफी की बात की जा रही है। न्याय दर्शन में किसी भी अपराध या पाप की पहचान और सजा को तर्क और प्रमाण से स्थापित किया जाता है। जबकि यह आयत केवल भगवान से माफी की बात करती है, इसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह केवल धार्मिक विश्वास पर आधारित है, और सार्वभौमिक न्याय के सिद्धांतों से असंगत है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल उन लोगों के लिए है जो इस्लाम में विश्वास करते हैं, जबकि अन्य धर्मों या विश्वासों के अनुयायियों के लिए यह लागू नहीं हो सकती।

आलोचना तालिका (Criticism Table)

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:131	**बिना तर्क के दंड**	**बिना प्रमाण के दंड**	**बिना प्रमाण के दंड**	**बिना प्रमाण के दंड**	**बिना प्रमाण के दंड**	**बिना प्रमाण के दंड**	**बिना तर्क के दंड**
3:132	**विश्वास आधारित**	**विश्वास आधारित**	**विश्वास आधारित**	**विश्वास आधारित**	**विश्वास आधारित**	**विश्वास आधारित**	**सार्वभौमिक नहीं**
3:133	**परहेज़गार का निर्धारण**	**परहेज़गार का निर्धारण**	**परहेज़गार का निर्धारण**	**परहेज़गार का निर्धारण**	**परहेज़गार का निर्धारण**	**परहेज़गार का निर्धारण**	**सार्वभौमिक नहीं**
3:134	**"नेकी" की अस्पष्ट परिभाषा**	**"नेकी" की अस्पष्ट परिभाषा**	**"नेकी" की अस्पष्ट परिभाषा**	**"नेकी" की अस्पष्ट परिभाषा**	**"नेकी" की अस्पष्ट परिभाषा**	**"नेकी" की अस्पष्ट परिभाषा**	**सार्वभौमिक नहीं**
3:135	**बिना तर्क के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**बिना प्रमाण के माफी**	**सार्वभौमिक नहीं**

निष्कर्ष:

ये आयतें मुख्य रूप से विश्वास और धर्म विशेष पर आधारित हैं, और इनमें तर्क, प्रमाण और तात्त्विकता का अभाव है। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, किसी भी दंड, सजा, या माफी का निर्धारण तर्क, प्रमाण और विवेक के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि केवल धार्मिक विश्वासों पर। इसके अलावा, ये आयतें केवल एक विशेष धार्मिक समुदाय के लिए हैं और इसलिए सार्वभौमिक मानवता के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकतीं।

आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण (Criticism of Verses)

हम प्रस्तुत आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण करेंगे और सिद्ध करेंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक रूप से गलत और सभी मानवता के लिए अस्वीकार्य हैं। हम न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों का उपयोग करेंगे ताकि इन आयतों को परखा जा सके।

---

1. आयत 136:

"ऐसे ही लोगों की जज़ा उनके परवरदिगार की तरफ़ से बख़शिश है और वह बाग़ात हैं जिनके नीचे नहरें जारी हैं कि वह उनमे हमेशा रहेंगे और (अच्छे) चलन वालों की (भी) ख़ूब खरी मज़दूरी है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:136)

न्याय दर्शन (Nyaya Darshan) के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन में सभी मामलों में तर्क, प्रमाण और कारण की आवश्यकता होती है। इस आयत में कहा गया है कि अच्छे लोग स्वर्ग (जन्नत) में जाएंगे और वहाँ हमेशा रहेंगे, लेकिन यह कोई तर्क या प्रमाण नहीं प्रस्तुत करती कि अच्छाई का मूल्यांकन कैसे किया गया है या स्वर्ग का क्या प्रमाण है। यह आयत केवल विश्वास और आस्था पर आधारित है, जो तर्क और न्याय के सिद्धांतों से मेल नहीं खाती।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल उन लोगों के लिए है जो इस्लाम में विश्वास करते हैं, जबकि यह अन्य धर्मों या विश्वासों के अनुयायियों के लिए लागू नहीं हो सकती। इसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकार करना असंभव है, क्योंकि यह केवल एक धार्मिक विश्वास पर आधारित है।

---

2. आयत 137:

"तुमसे पहले बहुत से वाक़यात गुज़र चुके हैं बस ज़रा रूए ज़मीन पर चल फिर कर देखो तो कि (अपने अपने वक़्त के पैग़म्बरों को) झुठलाने वालों का अन्जाम क्या हुआ।"
(सूरह आल-इम्रान 3:137)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी घटना या वाक्य का सत्यापन तभी किया जा सकता है जब वह प्रमाणित हो। यह आयत केवल अतीत के उदाहरणों को प्रस्तुत करती है, लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया कि जो घटनाएँ हुईं, वे सार्वभौमिक तर्क के आधार पर सही थीं या नहीं। इसमें इतिहास की घटनाओं का उपयोग किया गया है, लेकिन तर्क या प्रमाण का अभाव है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल एक धार्मिक परिप्रेक्ष्य से यह बताती है कि जो लोग पैगंबरों को नकारते हैं उनका क्या हुआ। यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण से असंगत है, क्योंकि यह केवल एक विशेष धार्मिक परिप्रेक्ष्य से बात करती है और अन्य धार्मिक विश्वासों को नज़रअंदाज़ करती है।

---

3. आयत 138:

"ये (जो हमने कहा) आम लोगों के लिए तो सिर्फ़ बयान (वाक़या) है मगर और परहेज़गारों के लिए हिदायत व नसीहत है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:138)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, यदि कोई जानकारी सार्वभौमिक रूप से सही है, तो उसे सभी के लिए लागू किया जाना चाहिए। यह आयत केवल एक विशेष समूह (परहेज़गारों) के लिए हिदायत और नसीहत प्रदान करती है, जबकि अन्य लोग इसे केवल एक बयान के रूप में देखते हैं। यह स्थिति तर्क और प्रमाण के साथ असंगत है, क्योंकि यदि यह आयत सार्वभौमिक सत्य को व्यक्त करती, तो इसे सभी के लिए समान रूप से लागू किया जाना चाहिए।

विशेष आलोचना:

यह आयत सार्वभौमिक रूप से अस्वीकार्य है क्योंकि यह केवल एक विशेष समूह को हिदायत देती है और इसे सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। इसका उद्देश्य एक विशिष्ट धार्मिक समुदाय के अनुयायियों को मार्गदर्शन प्रदान करना है।

---

4. आयत 139:

"तुम मुसलमानों काहिली न करो और (इस) इत्तफ़ाक़ी शिकस्त (ओहद से) कुढ़ो नहीं (क्योंकि) अगर तुम सच्चे मोमिन हो तो तुम ही ग़ालिब और वर रहोगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:139)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचनाः

यह आयत युद्ध और संघर्ष के संदर्भ में है और इसमें कहा गया है कि मुसलमानों को हार से निराश नहीं होना चाहिए। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, संघर्ष या युद्ध केवल तब ही उचित होता है जब उसके लिए वैध कारण हो, और यह आयत उस संघर्ष का औचित्य नहीं बताती। इसके अलावा, यह आयत केवल एक धार्मिक समुदाय के लिए है, जबकि संघर्ष और युद्ध के सिद्धांत को सार्वभौमिक मानवता और तर्क के आधार पर परिभाषित किया जाना चाहिए।

विशेष आलोचनाः

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय को संबोधित करती है और संघर्ष को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते हुए प्रेरित करती है। यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण से असंगत है, क्योंकि युद्ध और संघर्ष के लिए तर्क, प्रमाण और न्याय होना चाहिए।

---

5. आयत 140:

"अगर (जंगे ओहद में) तुमको ज़ख़्म लगा है तो उसी तरह (बदर में) तुम्हारे फ़रीक़ (कुफ़्फ़ार को) भी ज़ख़्म लग चुका है। ये इत्तफ़ाक़ाते ज़माना हैं जो हम लोगों के दरमियान बारी बारी उलट फेर किया करते हैं और ये (इत्तफ़ाक़ी शिकस्त इसलिए थी) ताकि ख़ुदा सच्चे ईमानदारों को (ज़ाहिरी) मुसलमानों से अलग देख लें और तुममें से बाज़ को दरजाए शहादत पर फ़ायज़ करे और ख़ुदा (हुक्मे रसूल से) सरताबी करने वालों को दोस्त नहीं रखता।"
(सूरह आल-इम्रान 3:140)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

यह आयत युद्ध के दौरान चोटों और युद्ध के परिणामों की तुलना करती है, लेकिन न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, युद्ध केवल तब उचित होता है जब उसके लिए वैध कारण और तर्क हों। इस आयत में केवल संघर्ष के परिणामों की बात की जा रही है, बिना यह स्पष्ट किए कि संघर्ष क्यों और किस आधार पर किया गया।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल एक विशेष युद्ध (उहद) के संदर्भ में है और इसमें कहा गया है कि यह सब ईश्वर के आदेश के तहत हुआ था। यह सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से असंगत है, क्योंकि युद्ध के लिए तर्क और प्रमाण होना चाहिए, न कि केवल धार्मिक आदेशों पर आधारित होना।

आलोचना तालिका (Criticism Table)

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:136	**प्रमाण का अभाव**	**प्रमाण का अभाव**	**प्रमाण का अभाव**	**प्रमाण का अभाव**	**प्रमाण का अभाव**	**प्रमाण का अभाव**	**विशेष समुदाय के लिए**
3:137	**तर्क का अभाव**	**तर्क का अभाव**	**तर्क का अभाव**	**तर्क का अभाव**	**तर्क का अभाव**	**तर्क का अभाव**	**विशेष समुदाय के लिए**
3:138	**केवल एक समूह को संबोधित**	**केवल एक समूह को संबोधित**	**केवल एक समूह को संबोधित**	**केवल एक समूह को संबोधित**	**केवल एक समूह को संबोधित**	**केवल एक समूह को संबोधित**	**सार्वभौमिक नहीं**
3:139	**संघर्ष के लिए तर्क**	**संघर्ष के लिए तर्क**	**संघर्ष के लिए तर्क**	**संघर्ष के लिए तर्क**	**संघर्ष के लिए तर्क**	**संघर्ष के लिए तर्क**	**सार्वभौमिक नहीं**

	का अभाव	का अभाव	का अभाव	का अभाव	का अभाव	का अभाव	
3:140	युद्ध के औचित्य का अभाव	युद्ध के औचित्य का अभाव	युद्ध के औचित्य का अभाव	युद्ध के औचित्य का अभाव	युद्ध के औचित्य का अभाव	युद्ध के औचित्य का अभाव	सार्वभौमिक नहीं

निष्कर्ष:

ये आयतें धार्मिक दृष्टिकोण से भरी हुई हैं और इनका उद्देश्य केवल एक विशेष समुदाय के अनुयायियों को मार्गदर्शन देना है। न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों के अनुसार, इन आयतों में तर्क, प्रमाण, और सार्वभौमिकता की कमी है। ये केवल एक धार्मिक विश्वास पर आधारित हैं, और इसलिए सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से असंगत हैं।

आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण (Criticism of Verses)

हम प्रस्तुत आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण करेंगे और सिद्ध करेंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक रूप से गलत और सभी मानवता के लिए अस्वीकार्य हैं। हम न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों का उपयोग करेंगे ताकि इन आयतों को परखा जा सके।

---

1. आयत 141:

"और ये (भी मंज़ूर था) कि सच्चे ईमानदारों को (साबित क़दमी की वजह से) निरा खरा अलग कर ले और नाफ़रमानों (भागने वालों) को मटियामेट कर दे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:141)

न्याय दर्शन (Nyaya Darshan) के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी व्यक्ति या समूह को "निरा खरा" अलग करने का आधार स्पष्ट तर्क और कारण होना चाहिए। इस आयत में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि "सच्चे ईमानदार" और "नाफ़रमान" के बीच भेद किस आधार पर किया गया है। यह केवल विश्वास और आस्था पर आधारित है, जबकि न्याय दर्शन के अनुसार किसी भी कार्य के सही होने के लिए तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल उन लोगों को लक्षित करती है जो इस्लाम को मानते हैं, जबकि यह किसी अन्य धर्म के अनुयायियों के लिए लागू नहीं होती। इसलिए यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है।

---

2. आयत 142:

"क्या तुम ये समझते हो कि सब के सब बहिश्त में चले ही जाओगे और क्या ख़ुदा ने अभी तक तुममें से उन लोगों को भी नहीं पहचाना जिन्होंने जेहाद किया और न साबित क़दम रहने वालों को ही पहचाना।"
(सूरह आल-इम्रान 3:142)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी कार्रवाई या निर्णय के लिए तर्क और प्रमाण का होना आवश्यक है। यह आयत केवल विश्वास और आस्था पर आधारित है और इसमें कोई स्पष्ट तर्क नहीं है कि जो लोग "जेहाद" करते हैं या "साबित क़दम" होते हैं, वे ही स्वर्ग में जाएंगे। यह सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धांतों से मेल नहीं खाती।

विशेष आलोचना:

यह आयत उन लोगों के लिए है जो इस्लाम के अनुयायी हैं, और यह अन्य धार्मिक विश्वासों को नज़रअंदाज़ करती है। इसका सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से कोई संबंध नहीं है।

---

3. आयत 143:

"तुम तो मौत के आने से पहले (लड़ाई में) मरने की तमन्ना करते थे बस अब तुमने उसको अपन आख से देख लिया और तुम अब भी देख रहे हो।"
(सूरह आल-इम्रान 3:143)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

यह आयत व्यक्त करती है कि लोग युद्ध के लिए तैयार रहते थे, लेकिन जब उन्हें वास्तविक संघर्ष का सामना करना पड़ा, तो वे डरने लगे। न्याय दर्शन में, संघर्ष या युद्ध को केवल वैध कारणों के आधार पर किया जाना

चाहिए। यह आयत केवल व्यक्तिगत भावनाओं और डर को व्यक्त करती है, जिसमें तर्क और कारण का अभाव है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय को संबोधित करती है और उसे युद्ध में भाग लेने के लिए प्रेरित करती है। सार्वभौमिक रूप से यह सिद्धांत केवल एक धर्म तक सीमित है और अन्य विश्वासों के अनुयायियों के लिए लागू नहीं हो सकता।

---

4. आयत 144:

"और मोहम्मद (स०) तो सिर्फ रसूल हैं (ख़ुदा नहीं) इनसे पहले बहुतेरे पैग़म्बर गुज़र चुके हैं फिर क्या अगर मोहम्मद अपनी मौत से मर जाए या मार डाले जाए तो तुम उलटे पाँव (अपने कुफ्रकी तरफ़) पलट जाओगे और जो उलटे पाव फिरेगा (भी) तो (समझ लो) हरगिज़ ख़ुदा का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा और अनक़रीब ख़ुदा का शुक्र करने वालों को अच्छा बदला देगा।"
(सूरह आल-इम्रान 3:144)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

यह आयत यह स्पष्ट करती है कि यदि पैगंबर मर जाते हैं, तो उनका अनुसरण करने वाले लोग "कुफ्र" की ओर लौट सकते हैं, जिससे उनकी आस्था पर सवाल उठता है। न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, आस्था और विश्वास किसी कारण या तर्क पर आधारित होने चाहिए, न कि केवल एक व्यक्ति के अस्तित्व पर। यह आयत पूरी तरह से विश्वास पर आधारित है, जिसमें कोई तर्क या कारण नहीं प्रस्तुत किया गया है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल इस्लामिक विश्वास से संबंधित है और अन्य धर्मों या विश्वासों को स्वीकार नहीं करती है। इसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकार करना कठिन है क्योंकि यह विश्वासों के विविधता को नज़रअंदाज़ करती है।

---

5. आयत 145:

"और बग़ैर हुक्मे ख़ुदा के तो कोई शख़्स मर ही नहीं सकता वक़्ते मुअय्यन तक हर एक की मौत लिखी हुयी है और जो शख़्स (अपने किए का) बदला दुनिया में चाहे तो हम उसको इसमें से दे देते हैं और जो शख़्स

आख़िरत का बदला चाहे उसे उसी में से देंगे और (नेअमत ईमान के) शुक्र करने वालों को बहुत जल्द हम जज़ाए ख़ैर देंगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:145)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, यह आयत मृत्यु और जीवन के बारे में एक सार्वभौमिक सत्य का दावा करती है, लेकिन यह तर्क और प्रमाण के बिना केवल एक धार्मिक सिद्धांत पर आधारित है। इसमें कोई स्पष्ट तर्क नहीं है कि मृत्यु के समय और स्थान का निर्धारण क्यों और कैसे होता है। न्याय दर्शन में कोई भी निर्णय स्पष्ट प्रमाण और तर्क से होना चाहिए।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल एक धार्मिक दृष्टिकोण से जीवन और मृत्यु का निर्धारण करती है। यह केवल इस्लामिक विश्वास के अनुयायियों के लिए है और अन्य धर्मों या विश्वासों के अनुयायियों के लिए अस्वीकार्य हो सकती है।

आलोचना तालिका (Criticism Table)

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:141	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	विशेष समुदाय के लिए
3:142	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	विशेष समुदाय के लिए
3:143	संघर्ष का तर्क का	संघर्ष का तर्क का	संघर्ष का तर्क का	संघर्ष का तर्क का	संघर्ष का तर्क का	संघर्ष का तर्क का	सार्वभौमिक नहीं

	अभाव	अभाव	अभाव	अभाव	अभाव	अभाव	
3:144	आस्था पर आधारित, तर्क का अभाव	आस्था पर आधारित, तर्क का अभाव	आस्था पर आधारित, तर्क का अभाव	आस्था पर आधारित, तर्क का अभाव	आस्था पर आधारित, तर्क का अभाव	आस्था पर आधारित, तर्क का अभाव	सार्वभौमिक नहीं
3:145	प्रमाण का अभाव, केवल विश्वास	प्रमाण का अभाव, केवल विश्वास	प्रमाण का अभाव, केवल विश्वास	प्रमाण का अभाव, केवल विश्वास	प्रमाण का अभाव, केवल विश्वास	प्रमाण का अभाव, केवल विश्वास	सार्वभौमिक नहीं

निष्कर्ष:

ये आयतें केवल एक विशेष धार्मिक विश्वास पर आधारित हैं और इनमें तर्क, प्रमाण और न्याय की कमी है। न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों के अनुसार, इन आयतों को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे केवल एक धार्मिक समुदाय के अनुयायियों के लिए हैं। इन आयतों में जीवन, मृत्यु, आस्था और संघर्ष पर विश्वास आधारित कथन हैं, जो सार्वभौमिक मानवता और तर्क के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते।

आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण (Criticism of Verses)

हम इन आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण करेंगे और सिद्ध करेंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक रूप से गलत और सभी मानवता के लिए अस्वीकार्य हैं। हम न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों का उपयोग करेंगे ताकि इन आयतों को परखा जा सके।

---

1. आयत 146:

"और (मुसलमानों तुम ही नहीं) ऐसे पैग़म्बर बहुत से गुज़र चुके हैं जिनके साथ बहुतेरे अल्लाह वालों ने (राहे खुदा में) जेहाद किया और फिर उनको ख़ुदा की राह में जो मुसीबत पड़ी है न तो उन्होंने हिम्मत हारी न बोदापन किया (और न दुशमन के सामने) गिड़गिड़ाने लगे और साबित क़दम रहने वालों से ख़ुदा उलफ़त

रखता है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:146)

न्याय दर्शन (Nyaya Darshan) के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी व्यक्ति या समूह का निर्णय तर्क और प्रमाण पर आधारित होना चाहिए। इस आयत में, जो "जेहाद" और "मुसीबत" का उल्लेख किया गया है, इसका कोई स्पष्ट तर्क या कारण नहीं है कि यह क्यों आवश्यक है। केवल आस्था और विश्वास पर आधारित यह कार्य उन लोगों को लक्षित करता है जो इस्लाम को मानते हैं, जबकि यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय के अनुयायियों के लिए है और इसका अन्य धर्मों के अनुयायियों से कोई संबंध नहीं है। सार्वभौमिक दृष्टिकोण से यह तर्कहीन और पक्षपाती है, क्योंकि यह केवल एक विशेष विश्वास के अनुयायियों को ही न्यायपूर्ण या सही मानता है।

---

2. आयत 147:

"और लुत्फ़ ये है कि उनका क़ौल इसके सिवा कुछ न था कि दुआएं मांगने लगें कि ऐ हमारे पालने वाले हमारे गुनाह और अपने कामों में हमारी ज़्यादतियाँ माफ़ कर और दुश्मनों के मुक़ाबले में हमको साबित क़दम रख और काफ़िरों के गिरोह पर हमको फ़तेह दे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:147)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी कर्म का परिणाम न्यायपूर्ण होना चाहिए और यह तर्क और प्रमाण से सिद्ध होना चाहिए। इस आयत में दुआ और प्रार्थना की बात की जा रही है, लेकिन इसका कोई स्पष्ट तर्क नहीं है कि क्यों और कैसे यह विशेष रूप से एक धार्मिक समूह के लिए लागू होता है। इसके अतिरिक्त, यह अन्य धर्मों के अनुयायियों के प्रति अत्यधिक नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाती है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल एक धर्म के अनुयायियों को संबोधित करती है और इसका सार्वभौमिक दृष्टिकोण से कोई औचित्य नहीं है। यह अन्य धार्मिक विश्वासों के अनुयायियों को नकारते हुए केवल एक विश्वास के अनुयायियों को विशेष रूप से मान्यता देती है।

---

3. आयत 148:

"तो ख़ुदा ने उनको दुनिया में बदला (दिया) और आख़िरत में अच्छा बदला ईनायत फ़रमाया और ख़ुदा नेकी करने वालों को दोस्त रखता (ही) है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:148)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी के कर्मों का फल न्यायपूर्ण और तर्कसंगत होना चाहिए। इस आयत में केवल विश्वास पर आधारित पुरस्कार और दंड की बात की जा रही है, लेकिन इसका कोई ठोस तर्क नहीं है कि केवल एक विशेष धार्मिक समूह के अनुयायी ही अच्छे फल के पात्र हैं। न्याय दर्शन में यह विचार अस्वीकार्य है क्योंकि किसी भी कर्म का फल तर्क और सत्य पर आधारित होना चाहिए, न कि केवल विश्वास पर।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम विश्वास के अनुयायियों के लिए है और इसका सार्वभौमिक दृष्टिकोण से कोई संबंध नहीं है। यह अन्य विश्वासों के अनुयायियों के लिए अस्वीकार्य है क्योंकि इसमें धर्म और कर्म के आधार पर भेदभाव किया गया है।

---

4. आयत 149:

"ऐ ईमानदारों अगर तुम लोगों ने काफ़िरों की पैरवी कर ली तो (याद रखो) वह तुमको उलटे पाव (कुफ्र की तरफ़) फेर कर ले जाऐंगे फिर उलटे तुम ही घाटे में आ जाओगे।"
(सूरह आल-इम्रान 3:149)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन में, किसी भी निर्णय का आधार तर्क और प्रमाण होना चाहिए, न कि केवल विश्वास और आस्था। यह आयत अन्य धर्मों के अनुयायियों को नकारती है और उनके मार्गदर्शन का विरोध करती है। इसके आधार पर, यह सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से अस्वीकार्य है क्योंकि यह केवल एक धार्मिक दृष्टिकोण को सही मानता है और दूसरों को नकारता है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम विश्वास के अनुयायियों के लिए है और इसका अन्य धर्मों के अनुयायियों से कोई संबंध नहीं है। यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है क्योंकि यह धार्मिक भेदभाव को बढ़ावा देती है।

---

5. आयत 150:

"(तुम किसी की मदद के मोहताज नहीं) बल्कि ख़ुदा तुम्हारा सरपरस्त है और वह सब मददगारों से बेहतर है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:150)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी व्यक्ति या समूह को न्यायपूर्ण तरीके से मदद की आवश्यकता होती है। इस आयत में यह कहा गया है कि केवल ख़ुदा ही सर्वश्रेष्ठ मददगार है, लेकिन यह किसी विशिष्ट धर्म के अनुयायियों को ही मदद देने का दावा करती है, जो सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से मेल नहीं खाता। किसी भी व्यक्ति को जीवन में मदद की आवश्यकता होती है, और यह विश्वास केवल एक विशेष समूह के लिए लागू नहीं हो सकता।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम विश्वास के अनुयायियों के लिए है और इसका सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों से कोई संबंध नहीं है। यह धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है, क्योंकि यह केवल एक धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानती है।

आलोचना तालिका (Criticism Table)

आय	न्याय दर्शन	वैशेषिक	पूर्व	सांख्य	उत्तर मीमांसा	भगवद	सार्वभौमिक

त		दर्शन	मीमांसा	योग	(वेदा)	गीता	मानवता
3:146	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	विशेष समुदाय के लिए
3:147	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	विशेष समुदाय के लिए
3:148	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	विशेष समुदाय के लिए
3:149	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	सार्वभौमिक नहीं
3:150	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	सार्वभौमिक नहीं

निष्कर्ष:

ये आयतें सार्वभौमिक रूप से अस्वीकार्य हैं क्योंकि इनमें केवल एक विशेष धार्मिक विश्वास को मान्यता दी गई है। न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों के अनुसार, ये आयतें तर्क और साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं। सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के अनुसार, इन आयतों में भेदभाव किया गया है और यह केवल एक धर्म के अनुयायियों को मान्यता देती हैं, जबकि इनका अन्य धर्मों के अनुयायियों से कोई संबंध नहीं है।

आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण (Criticism of Verses)

इन आयतों का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए, हम यह सिद्ध करेंगे कि ये आयतें सार्वभौमिक दृष्टिकोण से गलत और अस्वीकार्य हैं, और उनका उद्देश्य केवल एक विशिष्ट धार्मिक समुदाय को विशेष रूप से लक्षित करना है, न कि सभी मानवता के लिए एक समान संदेश देना।

---

1. आयत 151:

"तुम घबराओ नहीं हम अनक़रीब तुम्हारा रोब काफ़िरों के दिलों में जमा देंगे इसलिए कि उन लोगों ने ख़ुदा का शरीक बनाया (भी तो) उस चीज़ बुत को जिसे ख़ुदा ने किसी क़िस्म की हुकूमत नहीं दी और (आख़िरकार) उनका ठिकाना दोज़ख़ है और ज़ालिमों का (भी क्या) बुरा ठिकाना है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:151)

न्याय दर्शन (Nyaya Darshan) के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी व्यक्ति या समूह का निर्णय तर्क और प्रमाण पर आधारित होना चाहिए। इस आयत में, काफिरों के दिलों में "रोब" डालने का उल्लेख किया गया है, लेकिन इसमें कोई तर्क या वैध कारण नहीं दिया गया है। इसके अलावा, काफिरों को "ज़ालिम" और "दोज़ख़" का अधिकारी ठहराना सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के विपरीत है। यह विशुद्ध रूप से धार्मिक भेदभाव है और अन्य विश्वासों को नकारता है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम विश्वास के अनुयायियों के लिए है और इसका सार्वभौमिक दृष्टिकोण से कोई औचित्य नहीं है। यह अन्य धर्मों के अनुयायियों को नकारते हुए, केवल एक धर्म के अनुयायियों को सही और न्यायपूर्ण मानती है।

---

2. आयत 152:

"बेशक खुदा ने (जंगे ओहद में भी) अपना (फतेह का) वायदा सच्चा कर दिखाया था जब तुम उसके हुक्म से (पहले ही हमले में) उन (कुफ़्फ़ार) को ख़ूब क़त्ल कर रहे थे यहाँ तक की तुम्हारे पसन्द की चीज़ (फ़तेह) तुम्हें दिखा दी इसके बाद भी तुमने (माले ग़नीमत देखकर) बुज़दिलापन किया और हुक्मे रसूल (स०) (मोर्चे पर जमे रहने) में झगड़ा किया और रसूल की नाफ़रमानी की तुममें से कुछ तो तालिबे दुनिया हैं (कि माले ग़नीमत की तरफ़) से झुक पड़े और कुछ तालिबे आखेरत (कि रसूल पर अपनी जान फ़िदा कर दी) फिर (बुज़दिलेपन ने) तुम्हें उन (कुफ़्फ़ार) की तरफ से फेर दिया (और तुम भाग खड़े हुए) उससे ख़ुदा को तुम्हारा (इमान अख़लासी) आज़माना मंज़ूर था और (इसपर भी) ख़ुदा ने तुमसे दरगुज़र की और खुदा मोमिनीन पर बड़ा फ़ज़ल करने वाला है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:152)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

इस आयत में युद्ध को एक सकारात्मक कार्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि न्याय दर्शन के अनुसार युद्ध और हिंसा का समर्थन केवल उसी स्थिति में किया जा सकता है जब वह अत्याचार से बचने के लिए हो। इस आयत में मुस्लिम समुदाय को एक विशिष्ट लक्ष्य के लिए प्रेरित किया जा रहा है, जबकि यह सार्वभौमिक मानवता के सिद्धांतों के विपरीत है जो शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को बढ़ावा देते हैं।

विशेष आलोचनाः

यह आयत विशेष रूप से मुस्लिम समुदाय के अनुयायियों के लिए है और इसका अन्य धर्मों के अनुयायियों से कोई संबंध नहीं है। इसका सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से कोई स्थान नहीं है, क्योंकि यह हिंसा और युद्ध को धर्म के संदर्भ में उचित ठहराती है।

---

3. आयत 153:

"मुसलमानों तुम उस वक़्त को याद करके शर्माओ जब तुम (बदहवास) भागे पहाड़ पर चले जाते थे और बावजूद दस रसूल (स०) तुम्हारे खुलूस (खड़े) तुमको बुला रहे थे, मगर तुम (जान के डर से) किसी को मुड़ के भी न देखते थे बस (चूकि) रसूल को तुमने (आज़ारदा) किया ख़ुदा ने भी तुमको (उस) रंज की सज़ा में (शिकस्त का) रंज दिया ताकि जब कभी तुम्हारी कोई चीज़ हाथ से जाती रहे या कोई मुसीबत पड़े तो तुम रंज न करो और सब्र करना सीखो और जो कुछ तुम करते हो ख़ुदा उससे ख़बरदार है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:153)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचनाः

न्याय दर्शन के अनुसार, किसी भी व्यक्तित्व या समुदाय को तबाही या सजा का निर्धारण केवल उनके कर्मों के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि उन्हें एक विशिष्ट धर्म या विश्वास के आधार पर दंडित किया जाना चाहिए। इस आयत में मुस्लिम समुदाय को तबाही और सजा दी जाती है, जबकि किसी व्यक्ति या समुदाय के अच्छे और बुरे कर्मों का मूल्यांकन तर्क और प्रमाण के आधार पर किया जाना चाहिए।

विशेष आलोचनाः

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय के अनुयायियों के लिए है और इसका सार्वभौमिक दृष्टिकोण से कोई औचित्य नहीं है। यह अन्य विश्वासों के अनुयायियों को नकारते हुए केवल एक विश्वास के अनुयायियों को मान्यता देती है।

---

4. आयत 154:

"फिर ख़ुदा ने इस रंज के बाद तुमपर इत्मिनान की हालत तारी की कि तुममें से एक गिरोह का (जो सच्चे ईमानदार थे) ख़ूब गहरी नींद आ गयी और एक गिरोह जिनको उस वक्त भी (भागने की शर्म से) जान के लाले पड़े थे ख़ुदा के साथ (ख़्वाह मख़्वाह) ज़मानाए जिहालत की ऐसी बदगुमानिया करने लगे और कहने लगे भला क्या ये अम्र (फ़तेह) कुछ भी हमारे इख़्तियार में है (ऐ रसूल) कह दो कि हर अम्र का इख़्तियार ख़ुदा ही को है (ज़बान से तो कहते ही है नहीं) ये अपने दिलों में ऐसी बातें छिपाए हुए हैं जो तुमसे ज़ाहिर नहीं करते।"
(सूरह आल-इम्रान 3:154)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के मानसिक या आध्यात्मिक स्थिति को तर्क और न्याय के आधार पर नहीं समझा जा सकता है। इस आयत में एक समुदाय को अविश्वास और गलतफहमी के लिए दोषी ठहराया गया है, लेकिन इसमें किसी भी प्रकार का तर्क या प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया गया है कि यह अविश्वास क्यों था।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम समुदाय के अनुयायियों के लिए है और इसका अन्य धर्मों के अनुयायियों से कोई संबंध नहीं है। यह अन्य विश्वासों के अनुयायियों को नकारते हुए, केवल एक विशिष्ट विश्वास के अनुयायियों को सही मानती है।

---

5. आयत 155:

"बेशक जिस दिन (जंगे औहद में) दो जमाअतें आपस में गुथ गयीं उस दिन जो लोग तुम (मुसलमानों) में से भाग खड़े हुए (उसकी वजह ये थी कि) उनके बाज़ गुनाहों (मुख़ालफ़ते रसूल) की वजह से शैतान ने बहका के उनके पाँव उखाड़ दिए और (उसी वक़्त तो) ख़ुदा ने ज़रूर उनसे दरगुज़र की बेशक ख़ुदा बड़ा बख़्शने वाला बुर्दवार है।"
(सूरह आल-इम्रान 3:155)

न्याय दर्शन के अनुसार आलोचना:

न्याय दर्शन के सिद्धांत के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के कार्य का मूल्यांकन उनके कर्मों के आधार पर होना चाहिए। इस आयत में मुस्लिम समुदाय के भाग जाने का कारण "गुनाहों" और "शैतान" को ठहराया गया है, लेकिन यह कोई तर्क या प्रमाण नहीं प्रस्तुत करता कि क्यों यह हुआ और क्या इसे सार्वभौमिक रूप से सही ठहराया जा सकता है।

विशेष आलोचना:

यह आयत केवल मुस्लिम विश्वास के अनुयायियों के लिए है और इसका अन्य धर्मों के अनुयायियों से कोई संबंध नहीं है। यह धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से अस्वीकार्य है, क्योंकि यह एक समूह के कर्मों को धार्मिक कारणों से समझाने की कोशिश करती है।

आलोचना तालिका (Criticism Table)

आयत	न्याय दर्शन	वैशेषिक दर्शन	पूर्व मीमांसा	सांख्य योग	उत्तर मीमांसा (वेदा)	भगवद गीता	सार्वभौमिक मानवता
3:151	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	धार्मिक भेदभाव
3:152	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	हिंसा को उचित ठहराना
3:153	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण
3:154	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	तर्क का अभाव	धर्मनिरपेक्ष नहीं
3:155	तर्क का अभाव	तर्क					

का अभाव। तर्क का अभाव। तर्क का अभाव। तर्क का अभाव। तर्क का अभाव। भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण।

निष्कर्ष:

इन आयतों का सार्वभौमिक मानवता के दृष्टिकोण से कोई औचित्य नहीं है क्योंकि इनमें धर्म, विश्वास और हिंसा के आधार पर भेदभाव किया गया है। न्याय दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनों के सिद्धांतों के अनुसार, इन आयतों का कोई तर्क नहीं है और ये केवल एक विशिष्ट धार्मिक समूह के अनुयायियों को उचित ठहराती हैं, जबकि सभी मानवता के लिए समान और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करतीं।

आयत-विशेष आलोचना और न्याय दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर तर्कपूर्ण सवाल:

आयत 156:

"ऐ ईमानदारों उन लोगों के ऐसे न बनो जो काफ़िर हो गए भाई-बन्द उनके परदेस में निकले हैं या जेहाद करने गए हैं (और वहाँ) मर (गए) तो उनके बारे में कहने लगे कि वह हमारे पास रहते तो न मरते ओर न मारे जाते (और ये इस वजह से कहते हैं) ताकि ख़ुदा (इस ख़्याल को) उनके दिलों में (बाइसे) हसरत बना दे और (यू तो) ख़ुदा ही जिलाता और मारता है और जो कुछ तुम करते हो ख़ुदा उसे देख रहा है।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): इस आयत में जीवन और मृत्यु के बारे में दावा किया गया है कि केवल ख़ुदा ही जीवन और मृत्यु का कारण है। क्या यह दावा संवेदी अनुभव या वैज्ञानिक प्रमाण के आधार पर सत्यापित किया जा सकता है? क्या बायोलॉजिकल और प्राकृतिक कारणों को नकारना तर्कसंगत है?**
    - **सवाल: क्या केवल धार्मिक विश्वास से जीवन और मृत्यु की घटनाओं को समझना सही है? क्या संवेदी अनुभव और विज्ञान के अनुसार जीवन और मृत्यु को समझने का कोई स्थान नहीं है?**
2. **अनुमान (Anumana): "ख़ुदा ही जिलाता और मारता है" यह अनुमान किया गया है। क्या यह अनुमान तार्किक रूप से सही है, और क्या इसे बिना किसी वास्तविक प्रमाण के स्वीकार करना सही है?**
    - **सवाल: क्या यह कहना कि केवल ख़ुदा की इच्छा से जीवन और मृत्यु होती है, तर्कसंगत है? क्या इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चुनौती नहीं दी जा सकती?**

3. **अर्थापत्ति (Arthapatti): इस आयत में बिना किसी प्रमाण के यह दावा किया गया है कि लोग अपनी मौत के बाद ख़ुदा को दोष देते हैं, और उनके दिलों में हसरत पैदा होती है। यह क्या बिना किसी अन्य कारण के अप्रकट धारणा है?**
    - **सवाल: क्या यह धारणा बिना किसी ठोस प्रमाण के सत्यापित की जा सकती है कि लोग अपनी मृत्यु को लेकर हसरत महसूस करते हैं? क्या यह केवल एक धार्मिक परिकल्पना है?**

आयत 157:

"और अगर तुम ख़ुदा की राह में मारे जाओ या (अपनी मौत से) मर जाओ तो बेशक ख़ुदा की बख़शश और रहमत इस (माल व दौलत) से जिसको तुम जमा करते हो ज़रूर बेहतर है।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): यहाँ कहा गया है कि ख़ुदा की राह में मरने से बेहतर चीज़ है। क्या यह दावा संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है? क्या इस प्रकार के आध्यात्मिक दावे को शारीरिक और मानसिक अनुभव से जांचा जा सकता है?**
    - **सवाल: क्या यह कहना कि एक व्यक्ति की मृत्यु का मूल्य उसकी आध्यात्मिक स्थिति के आधार पर तय किया जा सकता है, सही है? क्या मृत्यु केवल आध्यात्मिक लाभ के लिए हो सकती है, या इसके वास्तविक प्रभावों को भी ध्यान में रखना चाहिए?**
2. **अनुपलब्धि (Anupalabdhi): क्या इस आयत में मृत्यु के लाभ के बारे में जो दावा किया गया है, वह किसी ठोस प्रमाण से परे है? क्या मृत्यु के बाद कोई ऐसी स्थिति होती है जिसे हम अनुभव कर सकें और प्रमाणित कर सकें?**
    - **सवाल: क्या यह कहना सही है कि मृत्यु के बाद कोई आध्यात्मिक लाभ निश्चित रूप से होता है, जबकि इसका कोई वैज्ञानिक या संवेदी प्रमाण नहीं है?**

आयत 158:

"और अगर तुम (अपनी मौत से) मरो या मारे जाओ (आख़िरकार) ख़ुदा ही की तरफ़ (क़ब्रों से) उठाए जाओगे।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्याशा (Pratyaksha): इस आयत में मृत्यु के बाद उठाए जाने का दावा किया गया है। क्या यह दावा संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है?**
   - **सवाल: क्या यह कहना सही है कि मृत्यु के बाद पुनः उठना संभव है, जबकि इसे संवेदी या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रमाणित नहीं किया जा सकता?**
2. **अनुमान (Anumana): क्या यह अनुमान सही है कि हर व्यक्ति जो मरता है, वह पुनः उठाया जाएगा? क्या यह एक धार्मिक विश्वास है या कोई तर्कसंगत तथ्य?**
   - **सवाल: क्या यह अनुमान तर्कसंगत है कि मृत्यु के बाद पुनः जीवन संभव है, और क्या इसके लिए कोई प्रमाण या तर्क दिया जा सकता है?**

आयत 159:

"(तो ऐ रसूल ये भी) ख़ुदा की एक मेहरबानी है कि तुम (सा) नरमदिल (सरदार) उनको मिला और तुम अगर बदमिज़ाज और सख़्त दिल होते तब तो ये लोग (ख़ुदा जाने कब के) तुम्हारे गिर्द से तितर बितर हो गए होते बस (अब भी) तुम उनसे दरगुज़र करो और उनके लिए मग़फ़ेरत की दुआ मांगों और (साबिक़ दस्तूरे ज़ाहिरा) उनसे काम काज में मशवरा कर लिया करो (मगर) इस पर भी जब किसी काम को ठान लो तो ख़ुदा ही पर भरोसा रखो (क्योंकि जो लोग ख़ुदा पर भरोसा रखते हैं ख़ुदा उनको ज़रूर दोस्त रखता है।)"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **अर्थापत्ति (Arthapatti): आयत में यह स्वीकार किया गया है कि रसूल का नरमदिल होना एक विशेष गुण है। क्या यह माना जा सकता है कि नरमी और सख़्त दिली का किसी विशेष धार्मिक विश्वास से कोई सीधा संबंध है, या यह केवल मानवीय गुण हैं?**
   - **सवाल: क्या यह सही है कि धार्मिक विश्वासों के आधार पर व्यक्ति के गुणों को परिभाषित किया जाए? क्या मनुष्य के सामाजिक गुणों को केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही देखा जाना चाहिए?**
2. **उपमान (Upamana): अन्य दार्शनिक दृष्टिकोणों, जैसे कि नीतिवाद या उपयोगितावाद, में भी यह माना जाता है कि नेतृत्व का तरीका सकारात्मक और नरम होना चाहिए। क्या यह आयत सामान्य मानवीय मूल्य से मेल खाती है, या केवल धार्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है?**

- सवाल: क्या यह कहना सही है कि नरमदिल और सख़्त दिल होना केवल धार्मिक विश्वासों का परिणाम है, या यह एक सार्वभौमिक मानवीय गुण हो सकता है?

आयत 160:

"(मुसलमानों याद रखो) अगर ख़ुदा ने तुम्हारी मदद की तो फिर कोई तुमपर ग़ालिब नहीं आ सकता और अगर ख़ुदा तुमको छोड़ दे तो फिर कौन ऐसा है जो उसके बाद तुम्हारी मदद को खड़ा हो और मोमिनीन को चाहिये कि ख़ुदा ही पर भरोसा रखें।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्याशा (Pratyaksha):** क्या यह दावा सत्य है कि ख़ुदा की मदद से कोई भी व्यक्ति पराजित नहीं हो सकता? क्या यह किसी प्रकार से संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है?
   - सवाल: क्या यह कहना सही है कि केवल ख़ुदा पर भरोसा करने से किसी भी संघर्ष में सफलता मिल सकती है, जबकि वास्तविक दुनिया में संघर्षों में पराजय भी होती है?
2. **अनुपलब्धि (Anupalabdhi):** इस आयत में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि यदि ख़ुदा मदद करता है तो कोई भी बाधा नहीं आ सकती। क्या इस प्रकार का विचार बिना किसी प्रमाण के सही है?
   - सवाल: क्या यह तर्कसंगत है कि केवल ख़ुदा की मदद से कोई भी व्यक्ति पराजित नहीं हो सकता, जबकि वास्तविक जीवन में संघर्षों की जटिलताएँ हैं जिन्हें धार्मिक विश्वास से नहीं समझा जा सकता?

निष्कर्ष: इन आयतों में धार्मिक विश्वास और आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर जोर दिया गया है, लेकिन न्याय दर्शन के सिद्धांतों के तहत इन दावों की सटीकता और तर्कसंगतता पर सवाल उठाए जा सकते हैं। आयतों में दी गई बातें वैज्ञानिक और संवेदी अनुभव से परे हैं, जिससे ये सभी विचार सभी मानवता के लिए सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य नहीं हो सकते।

आयत-विशेष आलोचना और न्याय दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर तर्कपूर्ण सवाल:

आयत 161:

"और (तुम्हारा गुमान बिल्कुल ग़लत है) किसी नबी की (हरगिज़) ये शान नहीं कि ख़यानत करे और ख़यानत करेगा तो जो चीज़ ख़यानत की है क़यामत के दिन वही चीज़ (बिलकुल वैसा ही) ख़ुदा के सामने लाना होगा फिर हर शख़्स अपने किए का पूरा पूरा बदला पाएगा और उनकी किसी तरह हक़तल्फ़ी नहीं की जाएगी।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): यहाँ कहा गया है कि नबी द्वारा किसी भी प्रकार की ख़यानत नहीं की जा सकती। क्या यह दावा संवेदी अनुभव या घटनाओं से सत्यापित किया जा सकता है?**
   - **सवाल: क्या हम किसी ऐतिहासिक संदर्भ में यह साबित कर सकते हैं कि नबी ने कभी कोई ख़यानत नहीं की? क्या यह एक धार्मिक विश्वास है या इसे सत्यापित किया जा सकता है?**
2. **अनुमान (Anumana): इस आयत में यह अनुमान लगाया गया है कि अगर कोई नबी ख़यानत करेगा तो वह अपनी ख्यानी का फल क़यामत में प्राप्त करेगा। क्या यह अनुमान धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित है या यह तार्किक दृष्टिकोण से सही है?**
   - **सवाल: क्या यह माना जा सकता है कि ख़यानत करने का परिणाम हमेशा क़यामत में मिलेगा, या इसे किसी अन्य तरीके से समझा जा सकता है?**
3. **अर्थापत्ति (Arthapatti): क्या इस आयत में नबी की ख़यानत के बिना एक शर्त पर जो नतीजा आया है, यह बिना किसी विशेष सांस्कृतिक और धार्मिक धारा के रूप में अप्रकट किया गया है?**
   - **सवाल: क्या यह विचार सच्चा है कि कोई धार्मिक शख्स अगर ख़यानत करता है तो उसका परिणाम क़यामत तक स्थायी रहेगा? क्या यह केवल विश्वास का मामला है?**

आयत 162:

"भला जो शख़्स ख़ुदा की ख़ुशनूदी का पाबन्द हो क्या वह उस शख़्स के बराबर हो सकता है जो ख़ुदा के गज़ब में गिरफ़्तार हो और जिसका ठिकाना जहन्नुम है और वह क्या बुरा ठिकाना है?"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्याशा (Pratyaksha): क्या यह दावा संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति का ठिकाना जहन्नुम होगा या ख़ुदा की ख़ुशनूदी प्राप्त कर पाएगा?**
    - **सवाल: क्या यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति का पूरा जीवन और उसका अंतिम ठिकाना किसी धर्मनिरपेक्ष प्रमाण से सत्यापित किया जा सकता है?**
2. **अनुमान (Anumana): इस आयत में यह अनुमान लगाया गया है कि ख़ुदा की ख़ुशनूदी और ग़ज़ब का अंतर न केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण से है, बल्कि इसका प्रभाव स्थायी है। क्या यह अनुमान तर्कसंगत है?**
    - **सवाल: क्या इस आयत में दी गई अवधारणाएँ (ख़ुशनूदी और ग़ज़ब) सांस्कृतिक और धार्मिक धारा से आगे बढ़ कर सार्वभौमिक रूप से सत्यापित की जा सकती हैं?**

आयत 163:

"वह लोग खुदा के यहाँ मुख़्तलिफ़ दरजों के हैं और जो कुछ वह करते हैं ख़ुदा देख रहा है।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): इस आयत में कहा गया है कि लोग ख़ुदा के यहाँ अलग-अलग दरजों पर हैं। क्या यह दावा संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है?**
    - **सवाल: क्या हम किसी व्यक्ति या समूह के धार्मिक और आध्यात्मिक स्तर को केवल धर्मनिरपेक्ष प्रमाणों के आधार पर सत्यापित कर सकते हैं?**
2. **अनुमान (Anumana): यह दावा किया गया है कि ख़ुदा के पास विभिन्न दरजों के लोग हैं और उनके कार्य देखे जाते हैं। क्या यह अनुमानित किया जा सकता है कि सभी कार्य वास्तविक समय में देखे जाते हैं?**
    - **सवाल: क्या इस दावे का अनुमान शारीरिक और मानसिक रूप से तार्किक है? क्या हम बिना किसी विश्वसनीय प्रमाण के यह मान सकते हैं?**

आयत 164:

"ख़ुदा ने तो ईमानदारों पर बड़ा एहसान किया कि उनके वास्ते उन्हीं की क़ौम का एक रसूल भेजा जो उन्हें खुदा की आयतें पढ़ पढ़ के सुनाता है और उनकी तबीयत को पाकीज़ा करता है और उन्हें किताबे (ख़ुदा) और अक़्ल की बातें सिखाता है अगरचे वह पहले खुली हुयी गुमराही में पड़े थे।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्याशा (Pratyaksha): क्या यह दावा किया जा सकता है कि ख़ुदा ने एक विशेष रसूल को भेजा और वह हमेशा सही मार्गदर्शन दे रहा है? क्या यह साक्षात्कार या शारीरिक अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है?**
    - **सवाल: क्या किसी विशेष धार्मिक शख़्स का मार्गदर्शन केवल एक दिव्य अनुभव माना जा सकता है, या इसे सामान्य नैतिक और धार्मिक दार्शनिक सिद्धांतों से जोड़ा जा सकता है?**
2. **अनुपलब्धि (Anupalabdhi): इस आयत में यह दावा किया गया है कि पहले लोग गुमराही में थे और अब ख़ुदा की आयतों के द्वारा रास्ता पाया है। क्या इस बदलाव को केवल धार्मिक दृष्टिकोण से समझा जा सकता है?**
    - **सवाल: क्या यह कहना सही है कि सभी पूर्व धार्मिक धाराएँ गुमराही में थीं, और केवल एक विशेष विश्वास को ही सही माना जा सकता है?**

आयत 165:

"मुसलमानों क्या जब तुमपर (जंगे ओहद) में वह मुसीबत पड़ी जिसकी दूनी मुसीबत तुम (कुफ़्फ़ार पर) डाल चुके थे तो (घबरा के) कहने लगे ये (आफ़त) क़हाँ से आ गयी (ऐ रसूल) तुम कह दो कि ये तो खुद तुम्हारी ही तरफ़ से है (न रसूल की मुख़ालेफ़त करते न सज़ा होती) बेशक ख़ुदा हर चीज़ पर क़ादिर है।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): इस आयत में यह दावा किया गया है कि मुसलमानों पर जो आफत आई, वह उनके अपने कर्मों का परिणाम थी। क्या यह दावा संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है?**
    - **सवाल: क्या यह दावा केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही सही है, या इसे अन्य तरीकों से भी सही ठहराया जा सकता है?**
2. **अनुपलब्धि (Anupalabdhi): क्या यह आयत केवल इस विचार को बढ़ावा देती है कि किसी भी प्रकार की आफत केवल ख़ुदा की इच्छाओं का परिणाम होती है? क्या इस विचार का कोई सामान्य**

या तर्कसंगत आधार हो सकता है?

- सवाल: क्या यह माना जा सकता है कि किसी भी समस्या का समाधान केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही पाया जा सकता है, जबकि वास्तविकता में कोई भौतिक या सामाजिक कारण हो सकता है?

निष्कर्ष: इन आयतों में धार्मिक विचारों और ईश्वरीय आदेशों के तहत जीवन की घटनाओं को समझने का प्रयास किया गया है। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, इन विचारों का तर्कसंगत आधार और वैज्ञानिक प्रमाण की आवश्यकता होती है, लेकिन ये अधिकतर धार्मिक विश्वासों पर आधारित हैं। इन दावों की तार्किकता और सत्यता पर सवाल उठाए जा सकते हैं, खासकर जब हम उन्हें संवेदी अनुभव और सामान्य जीवन के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करते हैं।

आयत-विशेष आलोचना और न्याय दर्शन के सिद्धांतों के आधार पर तर्कपूर्ण सवाल:

आयत 166:

"और जिस दिन दो जमाअतें आपस में गुंथ गयीं उस दिन तुम पर जो मुसीबत पड़ी वह तुम्हारी शरारत की वजह से (ख़ुदा की इजाजत की वजह से आयी) और ताकि ख़ुदा सच्चे ईमान वालों को देख ले।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. प्रत्यक्ष (Pratyaksha): इस आयत में कहा गया है कि मुसीबत ईमान वालों की शरारत से आयी। क्या इसे केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही समझा जा सकता है या इससे संबंधित भौतिक और सामाजिक कारणों की भी जांच की जा सकती है?
    - सवाल: क्या मुसीबत का आना सिर्फ शरारत या धार्मिक कारणों से होता है, या क्या इसे सामाजिक और व्यक्तिगत कार्यों के नतीजों के रूप में देखा जा सकता है?
2. अनुमान (Anumana): इस आयत में अनुमान लगाया गया है कि मुसीबत केवल एक दिव्य आदेश के तहत आई। क्या यह अनुमान तार्किक रूप से सही है या इसे व्याख्यायित करने का कोई अन्य तरीका हो सकता है?
    - सवाल: क्या यह निष्कर्ष सही है कि मुसीबतें केवल ईश्वर के आदेश से आती हैं, और क्या हम इससे उत्पन्न समस्याओं को अन्य कारणों से समझ सकते हैं?

3. **अर्थापत्ति (Arthapatti): क्या इस आयत में दिए गए कारण (शरारत और ईश्वर की इजाजत) के बिना इसका परिणाम किसी और रूप में होता?**
   - **सवाल: क्या ईश्वर की अनुमति के बिना शरारत के परिणामस्वरूप मुसीबत आना संभव है, या क्या यह केवल धार्मिक परिप्रेक्ष्य का हिस्सा है?**

आयत 167:

"और मुनाफ़िक़ों से कहा गया कि आओ ख़ुदा की राह में जेहाद करो या (ये न सही अपने दुशमन को) हटा दो तो कहने लगे (हाए क्या कहीं) अगर हम लड़ना जानते तो ज़रूर तुम्हारा साथ देते ये लोग उस दिन बनिस्बते ईमान के कुफ्र के ज़्यादा क़रीब थे अपने मुँह से वह बातें कह देते हैं जो उनके दिल में (ख़ाक) नहीं होतीं और जिसे वह छिपाते हैं ख़ुदा उसे ख़ूब जानता है।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्याशा (Pratyaksha): मुनाफ़िक़ों की बातों को छिपाने और उनके दिल में छुपे विचारों को केवल ईश्वर जानता है। क्या यह दावा संवेदी अनुभव से सत्यापित किया जा सकता है?**
   - **सवाल: क्या हम किसी के दिल के विचारों को केवल धार्मिक दृष्टिकोण से सत्यापित कर सकते हैं, या इसके लिए वास्तविक अनुभव और प्रमाण आवश्यक हैं?**
2. **अनुमान (Anumana): यह दावा किया गया है कि मुनाफ़िक़ों के दिल में जो कुछ छुपा होता है, वही वास्तविकता है। क्या यह अनुमान सटीक और तार्किक है, या हमें अन्य दृष्टिकोण से इसे समझने की आवश्यकता है?**
   - **सवाल: क्या यह माना जा सकता है कि किसी व्यक्ति के विचार और असलियत एक समान होते हैं, या हो सकता है कि कुछ बातें मुँह से कहने और दिल में छुपाने के बीच अंतर हो?**

आयत 168:

"(ये वही लोग हैं) जो (आप चैन से घरों में बैठे रहते है और अपने शहीद) भाईयों के बारे में कहने लगे काश हमारी पैरवी करते तो न मारे जाते (ऐ रसूल) उनसे कहो (अच्छा) अगर तुम सच्चे हो तो ज़रा अपनी जान से मौत को टाल दो।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): इस आयत में कहा गया है कि मुनाफ़िक़ों को अपनी जान को बचाने की ताकत नहीं है, तो क्या यह दावा सत्य है कि वे अपनी मौत को टाल नहीं सकते?**
   - **सवाल: क्या यह दावा किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु को टाल सकता है, या यह केवल ईश्वर की योजना का हिस्सा है?**
2. **अनुमान (Anumana): यह संकेत दिया गया है कि मुनाफ़िक़ों का यह व्यवहार सच्चे विश्वासियों से अलग है। क्या यह अनुमोदन सही है कि एक व्यक्ति के कर्म ही उसके विश्वास को सिद्ध करते हैं?**
   - **सवाल: क्या केवल कर्मों से किसी के विश्वास का मूल्यांकन करना सही है, या इसके लिए गहरे मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण की आवश्यकता हो सकती है?**

आयत 169:

"और जो लोग ख़ुदा की राह में शहीद किए गए उन्हें हरगिज़ मुर्दा न समझना बल्कि वह लोग जीते जागते मौजूद हैं अपने परवरदिगार की तरफ़ से वह (तरह तरह की) रोज़ी पाते हैं।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): शहीदों को मुर्दा न समझने और उनके जीवित होने के दावे को केवल धार्मिक दृष्टिकोण से स्वीकार किया जा सकता है। क्या यह दावा संवेदी अनुभव या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सत्यापित किया जा सकता है?**
   - **सवाल: क्या यह माना जा सकता है कि शहीदों की आत्माएं जीवित रहती हैं और उनकी आत्मा को रोज़ी मिलती है, या क्या यह केवल एक धार्मिक विश्वास है?**
2. **अर्थापत्ति (Arthapatti): क्या शहीदों के बारे में यह विचार (जीते जागते रहना) केवल एक आवश्यक धार्मिक परिकल्पना है, या इसे अन्य तरीकों से भी समझा जा सकता है?**
   - **सवाल: क्या शहीदों का जीवित रहना सिर्फ़ एक धार्मिक विचार है, या क्या इसे जीवन और मृत्यु के प्राकृतिक सिद्धांतों से जोड़ा जा सकता है?**

आयत 170:

"और ख़ुदा ने जो फ़ज़्ल व करम उन पर किया है उसकी (ख़ुशी) से फूले नहीं समाते और जो लोग उनसे पीछे रह गए और उनमें आकर शामिल नहीं हुए उनकी निस्बत ये (ख़्याल करके) ख़ुशियां मनाते हैं कि (ये भी शहीद हों तो) उनपर न किसी क़िस्म का ख़ौफ़ होगा और न आज़ुर्दा ख़ातिर होंगे।"

न्याय दर्शन के सिद्धांत से आलोचना:

1. **प्रत्यक्ष (Pratyaksha): इस आयत में शहीदों की खुशियों का वर्णन किया गया है। क्या यह वास्तविकता से प्रमाणित किया जा सकता है कि शहीद खुशी से अपने योगदान को मानते हैं, या यह केवल धार्मिक विचार है?**
   - **सवाल: क्या हम शहीदों की आत्मिक स्थिति को केवल धार्मिक संदर्भ में समझ सकते हैं, या क्या यह एक वास्तविक अनुभव का परिणाम है?**
2. **अनुमान (Anumana): इस आयत में माना गया है कि शहीदों की स्थिति और उनकी खुशी स्थायी और दिव्य है। क्या यह अनुमान ठीक है?**
   - **सवाल: क्या शहीदों की स्थिति को केवल एक दिव्य दृष्टिकोण से समझना सही है, या यह वास्तविकता से कहीं अधिक जटिल हो सकता है?**

निष्कर्ष: इन आयतों में शहीदों के साथ-साथ ईश्वर की योजना, धार्मिक विश्वास, और व्यक्तियों के कर्मों के परिणामों को समझने का प्रयास किया गया है। न्याय दर्शन के सिद्धांतों के अनुसार, इन विचारों को केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि तार्किक, दार्शनिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से भी आलोचना किया जा सकता है। यहाँ पर शहीदों की आत्मा, कर्म और जीवन के पश्चात की स्थिति पर प्रश्न उठाए गए हैं जो धार्मिक मान्यताओं से परे सामान्य अनुभव और प्रमाण पर आधारित हैं।

इन आयतों का आलोचनात्मक और तार्किक विश्लेषण करते हुए, हम निम्नलिखित वैज्ञानिक और मानवतावादी दृष्टिकोण से सवाल उठा सकते हैं:

1. आयत 171: ख़ुदा ने अन्नम और फ़ज़्ल का वादा किया

- **सवाल: क्या यह कथन कि "ख़ुदा मोमिनीन के सवाब को बरबाद नहीं करता" तार्किक रूप से सही है? क्या इस सिद्धांत में कोई वैज्ञानिक या अनुभवजन्य प्रमाण है जो यह सिद्ध कर सके कि एक ईश्वर निश्चित रूप से किसी के अच्छे कर्मों को कभी भी नष्ट नहीं करता?**

- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार अन्य मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ नहीं है, जो बताते हैं कि अच्छाई का पुरस्कार और बुराई का दंड समाजिक और व्यक्तिगत कार्यों पर निर्भर करता है, न कि एक सर्वशक्तिमान ईश्वर के फैसले पर?

2. आयत 172: जख़्म खाने के बाद भी इमानदारी और परहेज़गारी का महत्व

- सवाल: क्या यह विचार कि जिन लोगों ने जख़्म खाने के बाद भी ख़ुदा और रसूल का कहना माना, वे अधिक सवाब पाएंगे, किसी ठोस प्रमाण से समर्थित है? क्या यह धार्मिक विश्वास वास्तविक जीवन में लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है?
- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार मानवाधिकारों के खिलाफ नहीं है, जहाँ किसी व्यक्ति को केवल धर्म के आधार पर सम्मान और पुरस्कार देना अन्य व्यक्तियों के संघर्ष और कड़ी मेहनत को नकारता है?

3. आयत 173: दुश्मन के लश्कर से डरने पर इमान का बढ़ना

- सवाल: क्या यह विचार कि "दुशमन के लश्कर के बारे में सुनकर ईमान बढ़ जाता है," वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही है? क्या ईमान को डर और भय से जोड़ा जा सकता है, या ईमान एक मानसिक स्थिति है जो व्यक्तिगत और सामाजिक विकास पर निर्भर करता है?
- मानवता पर सवाल: क्या इस विचार से एकतरफा विश्वास और युद्ध के प्रति झुकाव को बढ़ावा नहीं मिलता, जो कि शांति और सहानुभूति के सिद्धांतों के खिलाफ है?

4. आयत 174: ख़ुदा की नेअमत और फ़ज़्ल से वापस आना

- सवाल: क्या यह दावा कि "ख़ुदा की नेअमत और फ़ज़्ल के साथ वापस आए और उन्हें कोई बुराई नहीं छूई," किसी भौतिक या मानसिक विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार ठीक है? क्या इसका अर्थ यह है कि अगर कोई व्यक्ति ईश्वर के मार्ग पर चलता है, तो उसे कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं होगा?
- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार यह नहीं दिखाता कि लोग केवल धार्मिक विश्वासों को अपनाकर अपने कष्टों और संघर्षों से भाग सकते हैं, जबकि वास्तविकता में समस्याएं और कष्ट जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा हैं?

5. आयत 175: शैतान के डर से बचना

- **सवाल: क्या यह दावा कि "शैतान अपने दोस्तों को डराता है और सच्चे मोमिन को केवल ख़ुदा से डरना चाहिए," वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उचित है? क्या मनुष्य का भय केवल मानसिक प्रक्रिया है, या क्या यह किसी बाहरी शक्ति पर निर्भर करता है?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार डर को बढ़ावा नहीं देता और एक व्यक्ति को अपनी स्वायत्तता और स्वतंत्र निर्णय से वंचित नहीं करता? क्या यह उस स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं है जिसे मानवाधिकारों के सिद्धांतों के अनुसार प्रोत्साहित किया जाना चाहिए?**

सारांश:

इन आयतों में दी गई बातों को तार्किक, वैज्ञानिक और मानवतावादी दृष्टिकोण से चुनौती दी जा सकती है। अधिकांश विचार धर्म, भय और विश्वास के आधार पर आधारित हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि जीवन में संघर्ष, कष्ट और कठिनाइयां सभी के लिए सामान्य होती हैं, और हमें उन्हें सहन करने की शक्ति स्वयं अपने अनुभवों और मानसिक स्थिति से प्राप्त करनी होती है, न कि केवल धार्मिक विश्वासों पर निर्भर रहकर।

इस आयत का वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने के लिए हम निम्नलिखित सवाल उठा सकते हैं:

1. आयत 176: कुफ्र की मदद करने वालों का परिणाम

- **सवाल: यह कथन कि "जो लोग कुफ्र की मदद करते हैं, वे ख़ुदा को कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकते," क्या इसे तार्किक रूप से सही माना जा सकता है? क्या यह विचार कि लोग किसी अन्य व्यक्ति या समूह के कुकर्मों से ईश्वर को नुकसान नहीं पहुँचा सकते, भौतिक या मानसिक दृष्टिकोण से सही है?**
- **मानवता पर सवाल: अगर कुफ्र के समर्थन से ईश्वर को कोई नुकसान नहीं होता, तो क्या यह विचार दुनिया में चल रहे अन्याय, संघर्ष और युद्धों को उचित ठहराता है, जो किसी न किसी रूप में मानवता को नुकसान पहुँचाते हैं? क्या यह मानवाधिकारों और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ नहीं है?**

2. आयत 177: कुफ्र के बदले में अज़ाब

- **सवाल: "जिन लोगों ने इमान के एवज़ कुफ्र ख़रीद लिया, वे ख़ुदा का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते," क्या यह दावा तार्किक रूप से सही है? अगर किसी व्यक्ति का विश्वास या कर्म गलत है, तो क्या उसे उसके कर्मों का दंड नहीं मिलना चाहिए, चाहे वह किसी ईश्वर के अनुयायी हो या न हो?**

- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, कि कोई भी व्यक्ति चाहे जिस विश्वास का पालन करे, वह खुदा का कुछ बिगाड़ नहीं सकता, मानव समाज में भेदभाव और विभाजन को बढ़ावा नहीं देता? क्या सभी को समान अधिकार और सम्मान नहीं मिलना चाहिए, भले ही उनका विश्वास कुछ भी हो?**

3. आयत 178: मोहलत देने का उद्देश्य

- **सवाल: "हमने मोहलत और बेफिक्री केवल इस कारण दी है ताकि वे और अधिक गुनाह करें," क्या यह किसी न्यायिक और नैतिक दृष्टिकोण से सही है? क्या यह सही है कि किसी को गुनाह करने का मौका देना ताकि वह अधिक गुनाह करें, यह अपने आप में एक समस्या नहीं उत्पन्न करता?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार ईश्वर के न्याय और इंसाफ़ की भावना के ख़िलाफ नहीं है? क्या यह नहीं दिखाता कि लोग अपने जीवन में गलत कार्यों के लिए खुला मार्ग पा सकते हैं, जबकि उन्हें सुधारने के बजाय उन्हें और अधिक गलत कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है?**

4. आयत 179: बुरे और भले की तमीज़

- **सवाल: "ख़ुदा बुरे और भले की तमीज़ नहीं करता," क्या यह सही है कि किसी व्यक्ति के कर्मों के बारे में निर्णय लेने का अधिकार केवल ख़ुदा के पास है, जबकि इंसानी समाज में न्यायालय और नैतिक संस्थाएँ इस प्रकार के निर्णयों को करती हैं? क्या यह ईश्वर के फैसले से परे नहीं है?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार मनुष्य को उसकी स्वतंत्र इच्छा और नैतिक जिम्मेदारी से वंचित नहीं करता? क्या समाज को यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह स्वयं निर्णय ले सके कि क्या सही है और क्या गलत?**

5. आयत 180: बुख़्ल और उसकी सजा

- **सवाल: "जिन लोगों ने ख़ुदा के फ़ज़ल से कुछ लिया है और फिर बुख़्ल करते हैं, उन्हें क़यामत के दिन उसके परिणाम भुगतने होंगे," क्या यह कथन यह नहीं दिखाता कि किसी व्यक्ति का धन या संपत्ति का संग्रह ईश्वर के अधिकारों से संबंधित है, जबकि वास्तविकता में संपत्ति के अधिकार समाजिक और कानूनी सिद्धांतों पर आधारित होते हैं?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार धन और संपत्ति की प्रबंधन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार को नकारता नहीं है? क्या लोगों को अपने साधनों का प्रबंधन करने का अधिकार नहीं होना चाहिए, बशर्ते वे समाज और मानवता के प्रति जिम्मेदार बने रहें?**

सारांश:

इन आयतों में कुछ विचारों को तार्किक दृष्टिकोण से चुनौती दी जा सकती है, जो मानवीय अधिकारों, सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के खिलाफ प्रतीत होते हैं। इन आयतों में एक सख्त, केंद्रीकृत और बाहरी फैसलों पर आधारित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, जबकि आज के समाज में हम व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, और न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए हर व्यक्ति को अपना रास्ता चुनने का अधिकार देते हैं।

इस आयत का वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने के लिए निम्नलिखित सवाल उठाए जा सकते हैं:

1. आयत 181: ख़ुदा के बारे में आरोप और शरारत का परिणाम

- **सवाल: "जो लोग कहते हैं कि ख़ुदा कंगाल है और हम बड़े मालदार हैं," क्या यह तर्क वास्तविकता पर आधारित है कि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति के आधार पर ईश्वर से श्रेष्ठ हो सकता है? क्या यह विचार तार्किक दृष्टिकोण से सही है कि कोई ईश्वर के बारे में गलत विचार रखे, तो उसे सज़ा दी जाएगी, जबकि ईश्वर का उद्देश्य न्याय और दया होना चाहिए?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह तर्क, जो किसी की सोच या विश्वास के आधार पर सज़ा का निर्धारण करता है, मानव अधिकारों और स्वतंत्रता के सिद्धांतों के खिलाफ नहीं है? क्या हमें सभी व्यक्तियों को उनके विश्वासों और विचारों के लिए सम्मान देना नहीं चाहिए, भले ही वह धार्मिक या सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भिन्न हो?**

2. आयत 182: ख़ुदा का न्याय

- **सवाल: "यह वही लोग हैं जो कहते हैं कि ख़ुदा ने हमसे वायदा किया है कि जब तक कोई रसूल हमें ये (मौजिज़ा) न दिखा दे," क्या यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही है कि किसी ईश्वर को मनुष्य के लिए कोई मौजिज़ा दिखाना चाहिए? क्या यह तर्क जीवन के वास्तविक अनुभवों और साक्ष्यों के खिलाफ नहीं है?**
- **मानवता पर सवाल: क्या इस प्रकार की सोच, कि ईश्वर को इन्सान की इच्छाओं और मांगों के अनुसार व्यवहार करना चाहिए, मानवता को आत्मनिर्भरता और तर्कशीलता के मूल्य से दूर नहीं करती? क्या हमें अपने विश्वास और व्यवहार को तर्क और विवेक के आधार पर नहीं बनाना चाहिए?**

3. आयत 183: पैग़ाम्बरों के मौजिज़ों के संबंध में आलोचना

- **सवाल: "तुमने उनसे पूछा था कि कुरबानी करें और आकाशीय आग से उन्हें जलाया जाए," क्या यह विचार वाकई में तार्किक है? क्या किसी ईश्वर के सामने किसी प्रकार के चमत्कार या बाहरी संकेतों**

का प्रमाण मांगना ठीक है, जबकि वास्तविकता में विश्वास और तर्क से जुड़े निर्णय ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं होते?

- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो चमत्कारी घटनाओं और आस्थाओं के पीछे एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को नकारता है, मानव समाज के विकास को रोक नहीं सकता? क्या हमें तर्क, प्रमाण और विवेक से अधिक reliance नहीं करना चाहिए, बजाय इसके कि हम केवल चमत्कारों और दिव्य संकेतों के पीछे भागें?

4. आयत 184: पूर्वजों की कड़ी आलोचना

- सवाल: "बहुत से पैग़म्बर रौशन मौजिज़े और सहीफ़े लेकर आ चुके हैं," क्या यह दृष्टिकोण इतिहास और संस्कृति के संदर्भ में समझा जा सकता है, जबकि विज्ञान और तर्कशक्ति का आधार जीवन में बढ़ चुका है? क्या हमें पहले के धर्मों और विश्वासों के ऊपर विचार करने के बजाय, वर्तमान के मानवाधिकारों और आधुनिक नैतिकता के सिद्धांतों के अनुसार विचार नहीं करना चाहिए?
- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो केवल पूर्वजों की मान्यताओं और प्रमाणों पर आधारित है, वर्तमान की वैज्ञानिक और तर्कशील दुनिया में अव्यावहारिक नहीं है? क्या हमें अपने समाज में एक बेहतर समझ और सहिष्णुता का निर्माण नहीं करना चाहिए, बजाय इसके कि हम केवल पुराने विश्वासों और विचारों का अनुसरण करें?

5. आयत 185: जीवन का उद्देश्य और क़यामत का फैसला

- सवाल: "दुनिया की जिंदगी धोखे की टट्टी के सिवा कुछ नहीं," क्या यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही है कि जीवन का उद्देश्य केवल एक अंतिम निर्णय (क़यामत) पर आधारित हो, जबकि जीवन में कई मूल्य और उद्देश्य होते हैं, जैसे व्यक्तिगत विकास, समाज का भला, और इंसानियत के प्रति दायित्व?
- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, कि जीवन का उद्देश्य केवल एक अंतिम नतीजे पर निर्भर करता है, मानव अस्तित्व और उसके अर्थ को संकीर्ण और नकारात्मक नहीं बना देता? क्या हमें जीवन को एक अविस्मरणीय अनुभव के रूप में नहीं देखना चाहिए, जिसमें हम अपने व्यक्तिगत और सामूहिक उद्देश्य का पालन करें, बजाय इसके कि हम केवल धार्मिक दृष्टिकोण से इसे एक सजा या इनाम तक सीमित करें?

सारांश:

इन आयतों में प्रस्तुत किए गए विचारों को तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चुनौती दी जा सकती है। जब हम मानवता, तर्क, और विवेक से संबंधित प्रश्न उठाते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि हमें जीवन के उद्देश्य और मार्ग

को सिर्फ धार्मिक विश्वासों से परे और वैज्ञानिक, नैतिक, और मानवतावादी सिद्धांतों के आधार पर समझने की आवश्यकता है।

इन आयतों का तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करते हुए, हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि किस प्रकार इन आयतों का संदेश मानवता के लिए हानिकारक हो सकता है, और वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण से ये कैसे गलत साबित हो सकती हैं।

1. आयत 191: ख़ुदा का जिक्र और आसमानों और ज़मीन की ग़ौर-फिकर

- **सवाल: "जो लोग उठते बैठते करवट लेते ख़ुदा का ज़िक्र करते हैं और आसमानों और ज़मीन की बनावट में ग़ौर व फ़िक्र करते हैं," क्या यह विचार सही है कि कोई व्यक्ति सिर्फ़ ईश्वर का जिक्र करने से आसमान और पृथ्वी के निर्माण के वैज्ञानिक पहलुओं को समझ सकता है? क्या यह तर्क सही है कि धार्मिक विचारों के बिना विज्ञान की खोज संभव नहीं है?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो केवल ईश्वर की महानता पर जोर देता है और धार्मिक दृष्टिकोण से ही ब्रह्मांड को समझने की कोशिश करता है, विज्ञान और तर्क के महत्व को नकारता नहीं है? क्या हमें ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए, बजाय इसके कि हम केवल धार्मिक विश्वासों से उसे व्याख्यायित करें?**

2. आयत 192: दोज़ख़ का अज़ाब और अन्याय के खिलाफ़ मदद

- **सवाल: "ऐ हमारे पालने वाले जिसको तूने दोज़ख़ में डाला तो यक़ीनन उसे रूसवा कर डाला," क्या यह सही है कि किसी व्यक्ति को उसके कार्यों के आधार पर दोज़ख़ में डाला जाए, जबकि कई बार लोग परिस्थितियों और समाज के प्रभाव में गलत निर्णय लेते हैं? क्या यह तर्क उचित है कि हर व्यक्ति को उसी रूप में सजा दी जाए, जैसा उसके कार्यों से प्रतीत होता है, जबकि मानवता में अनगिनत विविधताएँ और परिस्थितियाँ हैं?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह संदेश, जो सिर्फ़ दोज़ख़ की सजा पर केंद्रित है, लोगों को मानवता के मूल्यों को समझने में मदद करता है? क्या हमें सिर्फ़ सजा और अज़ाब के बारे में सोचने के बजाय, मानवता के मूल्य जैसे दया, समानता, और समझ को बढ़ावा नहीं देना चाहिए?**

3. आयत 193: ईमान लाना और गुनाहों से माफी

- **सवाल: "जब हमने एक आवाज़ लगाने वाले (पैग़म्बर) को सुना कि वह ईमान के वास्ते यू पुकारता था," क्या यह तर्कसंगत है कि किसी व्यक्ति का ईमान सिर्फ़ पैग़म्बर की बातों से तय किया जाता है?**

क्या इस तरह का विचार वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण से समाज के विकास और व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया से मेल खाता है?
- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो किसी विशेष धार्मिक मार्गदर्शन की आवश्यकता की ओर इशारा करता है, अन्य धार्मिक और विश्वासों की स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं करता? क्या सभी को अपनी आस्था और विश्वास के अनुसार जीवन जीने का अधिकार नहीं होना चाहिए?

4. आयत 194: वायदे का पालन और क़यामत के दिन की सजा

- सवाल: "और ऐ पालने वाले अपने रसूलों की मारफ़त जो कुछ हमसे वायदा किया है हमें दे और हमें क़यामत के दिन रूसवा न कर," क्या यह तर्कसंगत है कि किसी व्यक्ति के लिए सिर्फ़ धर्म के वायदे का पालन ही जीवन के उद्देश्य को तय करता है? क्या यह सोच, जो किसी के ईश्वर से वादे और सजा पर आधारित है, जीवन की जटिलताओं और विविधताओं को नकारती नहीं है?
- मानवता पर सवाल: क्या यह संदेश, जो केवल क़यामत के दिन की सजा और इनाम पर केंद्रित है, इंसानियत के वास्तविक मूल्यों, जैसे कि करुणा, समझ, और सहिष्णुता, को कमजोर नहीं करता? क्या हम सभी को जीवन में अच्छाई और भलाई के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए, बजाय इसके कि हम सिर्फ़ धार्मिक इनामों और सजाओं पर ध्यान केंद्रित करें?

5. आयत 195: शहीदों का इनाम और अल्लाह का बदला

- सवाल: "जो लोग (हमारे लिए वतन आवारा हुए) और शहर बदर किए गए और उन्होंने हमारी राह में अज़ीयतें उठायीं और (कुफ़्फ़ार से) जंग की और शहीद हुए मैं उनकी बुराईयों से ज़रूर दरगुज़र करूंगा और उन्हें बेहिश्त के उन बाग़ों में ले जाऊँगा," क्या यह तर्कसंगत है कि युद्ध में भाग लेने और शहीद होने के बाद व्यक्ति को इनाम मिलेगा, जबकि युद्ध स्वयं मानवता के मूल्यों के खिलाफ़ है? क्या यह विचार सही है कि युद्ध को धार्मिक तौर पर सही ठहराया जाए और उसे इनाम के रूप में देखा जाए?
- मानवता पर सवाल: क्या यह संदेश, जो युद्ध और हिंसा को उचित ठहराता है, समाज में हिंसा और संघर्ष को बढ़ावा नहीं देता? क्या हमें युद्ध और हिंसा के बजाय शांति, समझ, और सहनशीलता की ओर नहीं बढ़ना चाहिए, ताकि मानवता के वास्तविक मूल्य प्रबल हो सकें?

निष्कर्ष:

इन आयतों का तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट होता है कि इन आयतों का संदेश कुछ हद तक मानवता और विज्ञान के मूल्यों के खिलाफ़ जा सकता है। इन संदेशों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सहिष्णुता, और समझ को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। इन विचारों को चुनौती देते हुए हमें

मानवता के सार्वभौमिक सिद्धांतों को बढ़ावा देना चाहिए, जैसे दया, समानता, शांति और तर्कसंगतता, ताकि हम एक बेहतर और अधिक समावेशी समाज की ओर अग्रसर हो सकें।

इन आयतों का विश्लेषण करते हुए हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि इनका संदेश और तर्क क्यों मानवता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गलत हो सकता है, और ये कैसे मानव अधिकारों और मूल्यों के खिलाफ हो सकती हैं।

1. आयत 196: काफ़िरों का दुनिया में सुख

- सवाल: "काफ़िरों का शहरो शहरो चैन करते फिरना तुम्हे धोखे में न डाले," क्या यह तर्कसंगत है कि जो लोग धार्मिक मान्यताओं का पालन नहीं करते, उन्हें उनकी सुख-सुविधाओं से धोखा देना चाहिए? क्या धर्म के आधार पर किसी को उनकी जीवन शैली का मूल्यांकन करना सही है?
- मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो काफ़िरों के सुख को धोखा मानता है, समाज में धार्मिक भेदभाव को बढ़ावा नहीं देता? क्या हमें सभी इंसानों के सुख और खुशियों का सम्मान नहीं करना चाहिए, चाहे उनकी धार्मिक आस्थाएँ जो भी हों?

2. आयत 197: काफ़िरों का अंत

- सवाल: "ये चन्द रोज़ा फ़ायदा हैं फिर तो (आख़िरकार) उनका ठिकाना जहन्नुम ही है और क्या ही बुरा ठिकाना है," क्या यह विचार सही है कि एक व्यक्ति का जीवन सिर्फ़ उसकी धार्मिक आस्था के आधार पर निर्णय लिया जाए? क्या इससे समाज में शांति और समरसता की बजाय भेदभाव और नफरत नहीं फैलती?
- मानवता पर सवाल: क्या यह संदेश, जो काफ़िरों के लिए केवल बुराई और अज़ाब की बात करता है, मानवता के सिद्धांतों के खिलाफ नहीं है? क्या हमें धार्मिक रूप से भिन्न विचारों वाले लोगों को सम्मान और सहिष्णुता के साथ स्वीकार नहीं करना चाहिए?

3. आयत 198: नेक कार्यों का ईनाम

- सवाल: "जिन लोगों ने अपने परवरदिगार की परहेज़गारी इख़्तेयार की उनके लिए बेहिश्त के वह बाग़ात हैं जिनके नीचे नहरें जारी हैं," क्या यह विचार सही है कि केवल धार्मिक आस्था और परहेज़गारी के आधार पर किसी को स्वर्ग में स्थान मिलेगा? क्या यह विचार अन्य धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का सम्मान नहीं करता?

- **मानवता पर सवाल: क्या यह संदेश, जो अच्छे कार्यों को केवल धार्मिक आस्थाओं से जोड़ता है, यह नहीं मानता कि अच्छाई और मानवता का पालन किसी भी धर्म या विश्वास के बिना भी किया जा सकता है? क्या यह दृष्टिकोण सभी लोगों के लिए समान रूप से अच्छा और न्यायपूर्ण है?**

4. आयत 199: अच्छे कार्यों का पुरस्कार

- **सवाल: "ऐ एहले किताब में से कुछ लोग तो ऐसे ज़रूर हैं जो ख़ुदा पर और जो (किताब) तुम पर नाज़िल हुयी और जो (किताब) उनपर नाज़िल हुयी ईमान रखते हैं," क्या यह तर्कसंगत है कि किसी का ईमान और कार्य अच्छे होंगे सिर्फ़ इसलिए कि वह एक विशेष धार्मिक ग्रंथ में विश्वास करता है? क्या यह विचार धार्मिक विविधता का सम्मान नहीं करता?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो केवल धार्मिक किताबों के आधार पर अच्छे कार्यों को मान्यता देता है, यह नहीं कहता कि केवल एक विशिष्ट आस्था को सही माना जाएगा और अन्यथा सब गलत होंगे? क्या यह मानवता के सार्वभौमिक मूल्यों के खिलाफ नहीं है, जो हर व्यक्ति के अच्छे कार्यों का सम्मान करते हैं, चाहे वह किसी भी धर्म या विश्वास में विश्वास करता हो?**

5. आयत 200: ईमानदारी और जिहाद

- **सवाल: "ऐ ईमानदारों (दीन की तकलीफ़ों को) झेल जाओ और दूसरों को बर्दाश्त की तालीम दो और (जिहाद के लिए) कमरें कस लो और ख़ुदा ही से डरो ताकि तुम अपनी दिली मुराद पाओ," क्या यह संदेश, जो जिहाद को प्रोत्साहित करता है, हिंसा और युद्ध को सही ठहराता है? क्या यह मानवता के सिद्धांतों, जैसे शांति और अहिंसा, के खिलाफ नहीं है?**
- **मानवता पर सवाल: क्या यह विचार, जो जिहाद को एक सकारात्मक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत करता है, समाज में हिंसा और युद्ध को बढ़ावा नहीं देता? क्या हमें शांति, सहिष्णुता और सामूहिक कल्याण की ओर नहीं बढ़ना चाहिए, बजाय इसके कि हम जिहाद और संघर्ष के विचार को प्रोत्साहित करें?**

निष्कर्ष:

इन आयतों का तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करते हुए यह साफ़ दिखता है कि इनमें धार्मिक भेदभाव, हिंसा, और केवल एक विशिष्ट आस्था को सही ठहराने का संदेश है। ये विचार मानवता के सार्वभौमिक सिद्धांतों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के खिलाफ हो सकते हैं। इन आयतों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण हमें यह समझने में मदद करता है कि एक समावेशी और शांति-प्रेमी समाज के निर्माण के लिए हमें सभी आस्थाओं और विश्वासों का सम्मान करते हुए मानवता के मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए।